॥ ॐ तत्सत ॥

# वैराग्य भूषण प्रथम भाग

## यती तथा ब्रह्मचारी सुधार संगठन

लेखक

परम दरिद्री स्वामी निर्द्वन्द्वाश्रम जी

॥ ॐ तत्सत् ॥

# वैराग्य भूषण प्रथम भाग

## यती तथा ब्रह्मचारी सुधार संगठन

लेखक

परम दरिद्री स्वामी निर्द्वन्द्वाश्रम जी

प्रकाशक

प्रांत हर्दोई पोस्ट सांडी ग्राम छोछपुर-निवासी पं० श्रीराम
की चेष्टा से अति उदार पं० छोटेलाल द्विवेदी ने
सुकृतांश से परमार्थ छपाकर यती
तथा ब्रह्मचारियों के कर-
कमलों में समर्पण किया
परिश्रम की सफलता हो

सहायक

पं० शिवनाथ त्रिपाठी तथा हीगूलाल चतुर्वेदी मास्टर
परनापुर—बनारस।

सम्वत् २०१०

मूल्य—नियमों का पालन या उल्लंघन

प्रथम बार १०००

विदित हो कि यह अलपग्य बुद्धि का लेख असंशोधित ही प्रकासित होने वाला था। क्योंकि प्रथम श्री पं० स्वामी विरक्त ब्रह्मनिष्ठ कृत कल्यानन्द सरस्वती जी ने निरीक्षण किया और कहा कि किसी और महात्मा को भी देखा लेना। तो काशी में स्वामी चैतन्य देवाश्रमजी के हस्थगत एक महात्मा के पास भेजा तो कई दिन के बाद जैसा का तैसा ही वापस कर दिया और कहा कि हमारी समझ में ही न आया हम संशोधन क्या करें। तो चित्त हतोत्साहित हो गया और कुछ खेद भी भया। तत्पश्चात् अकस्मात दाता की प्राप्ति हो जाने पर काशी पुस्कर क्षेत्र तट निवासी त्याग वैराग्य मूर्ति ज्ञान स्वरूप श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ श्री स्वामी शान्ताश्रम जी को दिखाया तो उन्होंने कई दिन में योग्यायोग्य का विचार कर कहा कि मुमुक्षु भवन निवासी त्याग वैराग्य मूर्ति ज्ञान स्वरूप श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ श्री स्वामी भूमाश्रम जी को और दिखा लो तो जाकर देखने की प्रार्थना की तो उन्होने कहा कि इस समय हम आँख की औषधि कर रहे हैं। लिखने पढ़ने का निषेध है और जो श्री स्वामी शान्ताश्रम जी ने अवलोकन कर दिया वही योग्य है। और इस समय वेदादि बड़े २ आचार्यों के ही लेखों को नहीं मानते तो आधुनिक लेखों की क्या कहें कितने अंश में मानेंगे। यदि ज्ञान स्वरूप में कोई शका करे तो

अक्रोध वैराग्य जितेन्द्रिय त्वं क्षमा दया शान्ति जन प्रियत्वं।

निर्लोभ दाता भय शोक हीनः ज्ञानस्य चिन्हं दस लक्षणानि॥

इस प्रकार के महात्माओं के दर्शन पूजन की विशेष महिमा कही है। श्री भगवानुवाच।

नाम संन्यास दस विप्राणां कर्म संन्यास सतोणच।

ज्ञान संन्यास ममोदेही त्याग संन्यास मम दुर्लभः॥

यह सर्व कुछ होते हुये।

दो०—लोक जिसे सच्चा कहे, शास्त्र निन्दित ताहि।
शास्त्र जिसे सच्चा कहे, सो निन्दित कलिमाहि॥

ऐसे अनेक प्रकार के वाक्य हम निर्द्वन्द्व भास्करादि में कह चुके हैं। परन्तु मानता कौन इससे यह भी लेख गज स्नानवत निस्फल ही प्रतीत होता है जैसे जल के वेग से बाँध टूट जाता है तो फिर रुकना कठिन हो जाता है। इसी प्रकार अनियमाचरण से जब धर्म का भी बाँध टूट जाता है तो मर्यादा का पालन भार रूप और अति पाप मय प्रतीत होने लगता है। क्योंकि कलिदेव की कृपा से भोगाशक्ति अति प्रबल हो रही है। जब कोई प्राणी अपने भोगों को नहीं त्यागते हैं तो सन्यासी आदिकों के भोग इस समय अति रमणीय और इन्द्रियों को सुखदाई हो रहे हैं उनका त्याग कैसे किया जावेगा। और इसमें केवल त्याग वैराग्य का ही प्रतिपादन किया है। जब ऐसा है तो क्यों प्रकाशित किया जाय। मन मतंग मान तिनही किये बिना उपकार। जो कल्याणार्थी होंगे वह तो स्वीकार कर ही लेंगे। क्योंकि, भोग बार बार और मोक्ष एक वार है और भी विशेष विचारणीय यह है कि जैसे दीर्घकाल के रोगी का परहेज अति कठिन कहा है। उससे भी अति कठिन संन्यासी का संयम है वही आद्योपान्त तक वर्णन किया है।

## निवेदन

जिन्हें एक पुस्तक प्राप्त हो जावे वे दुबारा चेष्टा न करें। इसके बाद एक लेख नवरत्न भूषण नाम का परम भक्तिमय एक और है। यदि कोई विक्रियार्थ चाहे तो दे देवें और लेखनी को नमस्कार है अब नया लेख न लिखेंगे।

वितरणकर्ता
पं० गदाधरप्रसाद मास्टर
पुराना कटरा नं० १४, इलाहाबाद

ॐ तत्सत्

# वैराग्य भूषण प्रथम भाग

## यती तथा ब्रह्मचारी सुधार संगठन

श्रियः पतिर्यग्यपतिः प्रजा पतिर्धियापतिर्लोक पतिंधरापतिः।
पतिर्गतिश्चांधक वृष्णि सात्वतां प्रसीदतां मे भगवान्सतांपतिः॥
दोहा—तोया के सुत का तनय, ता सुत का प्रिय दास।
ताकर इष्टदेव जो, सो पुरवो यह आस॥

### प्रार्थना

काल है कराल औ कराल हूक काल यह,
जानि इसे आज अब विचार कुछ कीजिये।
आयु ना अपार अरु भोग हैं असार सब,
जानि असनीति भोगवास तजि दीजिये॥
शास्त्र का प्रमाण और बुद्धि का विचार,
यतिराज महाराज सुखसार रस पिजिये।
लेख है हमार औ सुधारणा तुम्हार,
निर्द्वन्द्व प्रार्थना से आप लेख लखि लीजिये॥

यती तथा ब्रह्मचारियों को यह भी ज्ञात हो कि श्री मत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य श्री ११०८ पूज्यपाद काशीस्थ मछलीबन्दरमठाश्रितमहामण्डलेश्वर श्री स्वामी कृष्णाश्रमजी तथा श्री मत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री ११०८ पूज्यपादश्री.इजहांपुर शीतलापीठ शक्तिविद्यालय अधिष्ठाता-

महामण्डलेश्वर श्री स्वामी अनन्ताश्रमजी की आज्ञानुसार फाल्गुन शुक्ल १३ गुरुवार सम्वत् २००६ वि० मिश्रित स्थान में श्री स्वामी सत्यबोधाश्रमजी, श्री स्वामी सर्वेश्वराश्रमजी, श्री स्वामी चैतन्याश्रमजी धर्मसंघ, श्रीस्वामीरामदेवाश्रमजी, श्री स्वामी शंकराश्रमजी, श्री स्वामी निर्द्वन्द्वाश्रमजी तथा वैराग्यबोधाश्रमादि ने बिचार किया कि संन्यास तथा ब्रह्मचर्य के नियमों का कुछ बिचार होना चाहिये। तो श्री गुरुदेवजी ने मुझ अल्पग्य को ही यह भार समर्पण किया तो इन्हीं के चरणों का ध्यान कर बुद्धि लेख करने में तत्पर हो गई। यदि निम्नलिखित नियम स्वीकृत हों तो इनके पालन करने का पूर्ण साहस करो ये नियम किसी व्यक्तिगत अर्थ नहीं हैं। इस काल कलिकाल की प्रचण्ड पाप रूप दावाग्नि से निकलने की इच्छा करता हुआ कौन धीर वीर भगवत्प्रिय धर्मावलम्बी कल्याणार्थी मुमुक्षु इन नियमों के पालने में कटिबद्ध होता है। जैसे हथेली में रोमजमनां असम्भव है तैसे ही इन साधनों के बिना कल्याण भी असम्भव ही है यह निर्विवाद सिद्ध है।

न शूद्रेवेद संस्कारस्तै लंचसिकतासुन।
न स्यात्करतले रोम तथा मुक्तिर्नरागिणाम्॥

इसलिये यह तो प्रत्यक्ष ही है कि इस संन्यासाश्रम का पतन तथा द्विडम्बना भी अधिक हो रही है और नियम विरकुल्य डूब रहा है इससे मण्डलेश्वरादिकों को विशेष ध्यान देकर इसके सुधारने का प्रयत्न करना चाहिये यह सिक्षा नहीं है बड़ाभारी दुःख है। क्योंकि काग, चील्ह से उड़ात विषय भोग के पादार्थ देखि। तो क्या यही धर्म नियम और मर्यादा इस आश्रम की है।

गाथा-आज नैयान्यास की यह डूबतो संसार में।
कोई न इसका है खिवैया अब पड़ी मजधार में॥ आ०
कामना की जोर आंधी तृष्णा तरंगों में पड़ी।
वासना के भमर उठते इसहि कारण है खड़ी॥ आ०

तिसके ऊपर संग्रहा की वेग वर्षा हो रही।
क्या करूं किससे कहूँ नीचे को इससे आ रही॥ आ०
संन्यासियों का पतन होगा यान होगा को कहे।
विषय रूपीग्राह इनको सब तरफ से तक रहे॥ आ०
गृहस्थस्यक्रियात्यागो व्रतत्यागोवटोरपि।
तपस्विनो ग्राम सेवा भिक्षोरिंद्रियलौल्यता॥
आश्रमापसदाह्य ते खल्वाश्रम विडंबकाः।
देवमाया विमूढांस्तानुपेक्षाताऽनुकंपयाः॥
विरक्तः प्रव्रजेद्धीमान्सरक्तस्तु ग्रहे बसेत्।
सरागो नरकं याति प्रव्रजन्हि द्विजाधमः॥
परमात्मनि यो रक्तो विरक्तोऽअपरमात्मनि।
सर्वैषणा विनिर्मुक्तः सभैक्षं भोक्तु मर्हति॥
कौपीन युगलं कंथा दण्ड एकः परिग्रहः।
यते परमहंसस्य नाधिकं तु विधीयते॥
यदि वा कुरुते रागादधिकस्य परिग्रहम्।
रौरवं नरकं गत्वा तिर्यग्योनिषु जायते॥
कुटुम्बं पुत्र दाराश्च वेदाङ्गानिं च सर्वशः।
यज्ञं यज्ञोपवीतं च त्यक्त्वा गूढश्चरेद्यतिः॥
परिव्राज्य गृहीत्वा तु यः स्वधर्मे न तिष्ठति।
तमारूढ च्युतं विद्यादिति वेदानुशासनम्॥
यस्तु प्रव्राजितो भूत्वापुनः सेवेतु मैथुनम्।
षष्टि वर्ष सहस्राणि विष्ठायां जायते कृमिः॥
तितिक्षा ज्ञान वैराग्य शमादि गुण वर्जितः।
भिक्षामात्रेण जीवीस्यात्स यतिर्यति वृत्तिहा॥
प्रतिष्ठा सूकरी विष्ठा समागीता महर्षिभिः।
तस्मादेनां परित्यज्य कीटवत्पर्यटेद्यतिः॥

बमनाहार वचस्य भाति सर्वैषणादिषु।
तस्याधिकारः संन्यासे त्यक्तदेहाभिमानिनः॥
यदा मनसि वैराग्यं जातं सर्वेषु वस्तुषु।
तदैव संन्यसेद्विद्वानन्यथा पतितो भवेत्॥
द्रव्यार्थमन्न-वस्त्रार्थं यः प्रतिष्ठार्थमेव वा।
संन्यासादुभय भ्रष्टः स मुक्तिं नाप्नुमर्हति॥
मोक्षो विषय वैरस्यं वद्धो वैसय को रसः।
यतावदेव विज्ञानं यथेक्षसि तथा कुरुः॥
अकुर्वन्विहितं कर्म निन्दितं च समाचरन्।
प्रवरन्निन्द्रियार्थेषु नरः पतनमृच्छति॥
ध्यानं शौचं तथा भिक्षा नित्यमेकान्त शीलता।
यतेश्चत्वारि कर्माणि पंचमं नोपपद्यते॥
इन्द्रियभ्यामजयभ्यां द्वाभ्यामेव हतं जगत्।
अहो उपस्थ जिह्वाभ्यां ब्रह्मादि मशकावधि॥
अपहाय निजं कर्म कृष्ण कृष्णेति वादिनः।
ते हरिर्द्विषणः पापाः धर्मार्थं जन्म यद्धरेः॥
अभक्ष्यस्य निवृत्त्या तु विशुद्धं हृदयं भवेत्।
आहार शुद्धौ चित्तस्य विशुद्धिर्भवति स्वतः॥
करपात्रीति विख्याता भिक्षापात्र विवर्जिता।
तेषां शतगुणं पुण्यं भवत्येव दिने दिने॥
विषय विरक्तो वासनाक्षयोब्रह्म निष्ठा॥
संन्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः॥

सत्यंवद॥ धर्मंचर॥ यान्यनवद्यानिकर्माणि॥ तानि सेवितव्यानि॥ नो इतराणि॥ अर्थात् जो अनिन्दनीय कर्म उन्हीं को मनवाणी शरीर से करना चाहिये॥ और जो निन्दनीय उनको नहीं॥

## ॥ येतत्सिद्धान्त शास्त्रीय मुख्य नियमावली ॥

१—सद्गुरु की आज्ञा को भलीभांति पालना चाहिये परंतु संन्यास के मूल का विध्वंस नहीं करना।

२—विदेशी पदार्थ का सदैव त्याग और आहार शुद्ध एवं स्वान वृत्ति को नहीं ग्रहण करना।

३—बाजार के पक्वान को न खाना तैसे ही कोकोयंम घी वर्फ तथा नल के पानी को हाथ से भी न छूना क्योंकि ये अति ही अशुद्ध हैं घी वर्फ मछली की चरबी और गैस से बनते हैं जो विष्ठा का सत है।

४—मील की शक्कर को न खाना सुनने में आता है कि सर्व जीवों की हड्डी का रस इसमें पड़ता है। मलिन आचरण से अनाचार की वृद्धि होती है।

५—लोभ तथा तृष्णा को तो श्वान विष्ठा के समान यती को त्याग देना, यदि न त्यागेगा तो पाप ही बढ़ेगा तो नर्क हो ही जायगा।

६—सर्व इन्द्रियों के जीतने का पूर्ण उपाय करना क्योंकि अजितेन्द्रिय को ही कृपण कहा है। विद्वान के भी मन को अपनी ओर खींच लेती हैं।

७—यती को टीका यानी इंजेक्शन नहीं लगवाना, सुना है कि किन्हीं जीवों का पीव इस दवा में मिलाकर प्रवेश किया जाता है तथा छेदन तापन का निषेध भी है।

८—इस अमूल्य जीवन को मोक्ष के ही साधन में लगाना क्योंकि इसका बारम्बार मिलना न होगा इससे विषय भोगों से भागते रहो।

९—पूजा प्रतिष्ठा को सूकरी विष्ठा समजान जनता को सच्चा धर्म का उपदेश करना संन्यासि ही का मुख्य धर्म है क्यों कि इन्हीं को ही निर्लोभी कहा है।

१०—ऊनी, रेशमी वस्त्र नहीं धारण करना यती को दोष है ( ऊर्णा कीटोद्भवं वस्त्रं कस्तूरी रोचनं तथा। वर्जनीयं प्रयत्नेन स्पृष्ट्वा चान्द्रायणं चरेत् ) और रंगना भी गेरू से ही यती को अन्य रङ्ग की विधि नहीं है।

११—ऊर्ध्व वस्त्र भी न पहिरना क्योंकि देखनेवाले को दोष कहा है तो पहिरनेवाले यती को क्या कहा जावे ( विधवा कंचुकोपेत सधवा कंचुकी विना। यतिरकंचुकोपेत द्रष्ट्वा चक्षुर्नि मीलयन् )।

१२–खाट पर बैठना, लेटना, स्वेत वस्त्र, पशु की सवारी, लोलुपता आदि के ग्रहण में यती को पाप कहा है, पाप ही दुर्योनि का मूल है।

१३—जब स्त्री की प्रतिमा देखने में यती को शास्त्र दोष बताता है तो कपोलस्पर्श कर चेली करने में तो मैथुन का दोष अवश्य ही होगा और अनधिकारी को शिष्य भी न करना क्योंकि ( शिष्यपापत्तथा गुरुः )।

१४—विना साधन सम्पन्न और वैराग्य की परीक्षा किये संन्यास न देना और लेना भी नहीं, क्योंकि ( सोचिय यती प्रपंच रत, विगत विवेक विराग )।

१५—अपने दोषों को मत छिपाओ, न्यायकर्ता ईश्वर सर्वत्र देखता है और मृत्यु को सदैव अपने मस्तक पर बैठा देखो तो भोजन की भी रुचि जाती रहेगी तो फिर और भोगों की क्या कहें ( विद्वदिच्छाप्यल्पभोगं कुर्यान्नव्यसनंव्र हु )।

१६—अपने दोष को समाज में प्रकाशित कर दे बाद उसके अनुसार प्रायश्चित्त करे जिससे निर्दोष हो जावे।

१७—छौर ऋतु के ही विधान से होनी चाहिये अन्यथा नहीं अथवा जटिल ही रहे।

१८—भिक्षा पंच प्रकार के ही विधान से करनी परंतु स्वादान्न की यती को याचना न करनी चाहिये ।यदि करेगा तो पाप होगा ।

१९—पात्र मृत्तिका 'तूँबा, दारु' तथा बांस का ही रखना और कांस्यपात्र में भिक्षा करना तथा औषधि आदि करने में संन्यासी को नर्कगामी कहा है ( एकान्नी कांस्यभोजी च भैषजी वस्तु संग्रही । चत्वारो नरकंगत्व स्वयंभुर्मनुरब्रवीत् )

संका—संन्यासी को धातु मात्र के पात्र में भिक्षा करने की विधि कही है परंतु संग्रह न करे । और यहा कांस्यपात्र में खाने से नर्क होगा इन दोनों में अत्यन्त विरोध है ।

समा०—जो त्यागी विरक्त विधिनिषेध को माननेवाले आचार्य कोटि के परमहंस जब इनको सर्व का त्याग कहा है वो धातु पात्र में भिक्षा करने की विधि कैसे हो सकती है ।। अब शेष जो कुटीचक बहूदकादि हैं उन्हीं को धातु पात्रमें भिक्षा करने की विधि है ।। यदि ऐसा न माना जायगा तो करतल भिक्षा तरुतर वासः ।। तथा ।। करपात्रीति विख्याता ।। इसका खंडन हो जायगा ।

संका—यह विधि तो उनके वास्ते है जो अवधूत कोटि के परमहंस हैं आचार्य कोटिवालों को नहीं ।

समा०—वह तो स्वतन्त्र विधि निषेध से परे ।। परेच्छया बालवदा-त्मवेत्ता ।। को विधिः को निषेधः ।। इसलिए यह विधि इन्हीं आचार्य कोटि वालों के वास्ते है । यदि यही संग्रही तथा धातुपात्र में भिक्षा करेंगे तो कुटीचक बहूदकादि क्या करेंगे ।

जैसे—धर्मराज लड़िये को जैहैं । तो अर्जुन भीमसेन का करिहैं ।। परन्तु ।। काल की गति ईदृसी ।। जैसा चाहें वैसा करें । इससे सर्वसंग्रह का त्यागकर इन परमहंसों का ही सबको अभय दान देना मुख्य धर्म है । अभयं सर्व भूतेभ्यो दत्वा संन्यसमाचरेत् । संन्या-साद्ब्रह्मणः स्थानम् ।। के समान
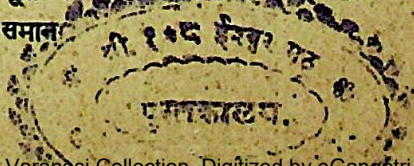
२०—यदि कोई धर्मध्वज इसका निर्णय करे तो सर्वको अपने ही बलसे पधारना होगा तथा भिक्षा भोजन भी अपने ही अधीन रहेगा।

२१—रोगादि के समय नियम के छूट जाने में कोई दोष नहीं अन्यथा छोड़ देने में पाप अवश्य होगा।

२२—सत्संग द्वारा तथा त्याग वैराग्य से सर्वप्रपंच को ज्ञानाग्नि में भस्म कर देना।

२३—यती को अनिकेत रहना और ग्राम में एक-दो रात्रि से अधिक न रहना, देखो बहुत से अनाधिकारी संन्यासियों को इन्द्राजने अरुन्मुखान् कुत्तों से मरवाकर भी पाप का भागी न भया था। इससे इस समय यतियों को बड़ी सावधानी से रहना चाहिये।

२४—जितने अंश में जितने नियमों को पालन कर सके उनका निर्णय किसी त्यागी विरक्त विद्वान् से ही करना।

२५—संन्यास धर्म लौकिक भोगों का आश्रय नहीं है, केवल मोक्ष का ही साधन है।

२६—भोग मोक्ष का समुच्चय रात्रि दिवस के समान अत्यन्त विपरीत है।। इसलिए कौन प्रभू का प्यारा नियमावलम्बी इस समय सुधार संघटन की रुकी हुई गाड़ी को संचालित करनेवाला होता है।

२७—इससे नियम पर सर्वदा आरूढ़ रहना, प्राण भले ही चले जावे पर नियम न जाने पावे क्योंकि जीव को ब्राह्मण शरीर और संन्यासाश्रम एक ही बार मिलता है जो इन दोनों से गिर गये तो फिर ये न मिलेंगे।

शंका—कबतक नेम निबाहिये।

स० दो०—जबतक तनमें दम रहे और रहे, सामर्थ। तबतक नेम निबाहिये, यही नेम का अर्थ।। नेम प्रेम के बीच में, है वह परमानन्द, इससे नेम निबाहि ले। तो हो जाओ निर्द्वन्द्व।।

॥ निर्द्वन्द्वोहि महाबाहो सुखं बन्धात्प्रमुच्यते ॥

२८—इससे कपट, छल तथा लोभ को छोड़ परमेश्वर में सच्चा भाव समर्पण करना संन्यासी का ही मुख्य नियम है ॥

सुद्धबुद्धविमुक्तैकसच्चिदानंदलक्षणम् ।
सुद्ध चेतन येवाहं कला कलन वर्जितम् ॥

२९—यती को देहाध्यासी भी न होना क्योंकि देहाध्यास और आत्मानुसंधान युग पद अत्यन्त विरुद्ध हैं ॥

देहोऽहमितिया बुद्धिरविद्या सा प्रकीर्तिता ॥
नाहं देहश्चिदात्मेति बुद्धि र्वद्येनि भ.एयते ॥

३०—यती को एक रसना इन्द्रिय के न जीतने से ही सर्व अनर्थों की प्राप्ति हो जाती है। इससे अखाद्य पदार्थों में घृणा कर इसको जीतना चाहिये।

३१—भांग, तमाखू, अफीम तमाशादि व्यसनों को स्वान विष्ठा सम त्याग देना ये यती को दीन बना देते हैं।

३२—ब्रह्मचर्य यह प्रथमाश्रम है। विद्याध्ययन के अतिरिक्त ब्रह्मचारी को परपाकी न होना चाहिये। इसके चार भेद हैं—नैष्ठिक उपकुर्वाण, स्नातक और मठस्थ यह ग्रहस्थी के सर्व भोगों को भोग-कर भी ग्रहण कर सकते हैं। इनको केवल एक काषाय वस्त्र गुरु का प्रसाद शीश पर धारण कर अत्यन्त तपश्चर्या का ही अभ्यास करें जिससे सर्व दोष शांत हो जावें ॥ तपसा किल्विषं हंति ॥ नहीं तो वही बात जैसे वृद्धा वेश्या पतिव्रता।

३३—बाद और सब वस्त्र ब्रह्मचारी को श्वेत ही रखना; यदि क्षत्रिय हो तो रक्त, वैश्य हो तो पीत भी धारण कर लेवें और गुरु सेवा ही में रहें।

३४—ब्रह्मचारी आदि गायत्री व्रतादि के अनुष्ठान किये विना तथा पूर्णतया अन्तःकरण विशुद्ध हुए और तीव्र वैराग्य उदय हुए बिना संन्यास न ग्रहण करें क्योंकि इनके विना केवल सन्यास से . सुख

शांति न होगी संन्यास ऐसे लेना चाहिये जैसे कालिका आदि ब्रह्मचारियों ने लिया।

३५—नहीं तो जैसे चोर एक देश को छोड़ दूसरे देश में कहीं रहेगा और चोरी आदि को न छोड़ेगा तो सजा का भागी अवश्य उसको होना पड़ेगा। इसी प्रकार ये ब्राह्मण ग्रहस्थादि को त्यागकर सहसा संन्यास में कूद पड़ते हैं यदि संग्रह आदि दोषों को न छोड़ोगे तो बलात्कार से अनर्थ का भागी होना पड़ेगा जैसे॥ विचारहीनस्य वनेपि वन्घनम्भवेदवस्यं भरतादिवद्यतः॥

३६—यती को अन्न द्विजाति का ही लेना यदि कोई स्वधर्माचरणी ब्राह्मण भक्त उत्तम शूद्र भी अपनी श्रद्धा से देवे तो लै लेवे परन्तु अग्नि से सिद्ध किया ब्राह्मण का हो किंतु दुराचारी कोई भी हो उससे सदैव बचते रहना।

३७—भिक्षा एक वार करना यदि दुबारा करना हो तो दिन में ही कर ले रात को यदि कुछ फलादि मिल जावे तो पा लेवे।

३८—संन्यासी को स्वपाकी भी न होना क्योंकि भिक्षा बनाने में बड़ा भारी पाप कहा है। स्वपाकी यतिर्नष्टः परपाकी ब्रह्मचारिणाम्॥

३९—यती को जन्मस्थान पर जाने का निषेध है तो रहनेवाले को क्या कहैं कितना पाप होगा॥

विद्वान्स्वदेशमुत्सृज्य सन्यासानन्तरंस्वतः।
कारागारविनिमुक्त चोरवद्दूरतोवसेत्॥

४०—जैसे कोई कारीगर किसी धातु को अपनी बुद्धि के साँचे में ढालकर अनेक प्रकार का बना देता है। तैसे ही नियमानन्द एक रस आनन्द घनआत्मा को ये अपनी २ भोग भावना के अनुसार अनेक रूपों में परिणित कर लेते हैं।

४१—तृष्णा वासना के त्यागे बिना सुख की प्राप्ति और संसार से

निवृत्ति न होगी। यच्च काम सुखं लोके यच्च दिव्य महत्सुखं। तृष्णा क्षय सुखं सेते नार्हति षोडशी कलाम्॥ वासनां वृद्धिता कार्य कार्यं वृद्धया च वासनः। वर्धते सर्वथा पुंसाम्संसारो न निवर्तते॥ इसीसे कठिन से अति कठिन नियमों को संन्यासी ही पालन कर सकता है। इसीसे इस आश्रम में कठिन नियमों का विधान है। जीवतोऽपि मृतो भूत्वा। काशीखण्ड में कहा है कि संन्यासी यदि एक कौड़ी को भी ग्रहण करे या रक्खे तो उसको प्रतिदिन सहस्र गौहत्या का पाप लगता है। इस प्रकार युक्त नियमों को यती तथा ब्रह्मचारी न पालन करेंगे तो निश्चय नर्कगामी होना पड़ेगा। बाद दुर्योनि की प्राप्ति हो ही जायगी। फिर इसी घटी यंत्र में पड़ा रहना होगा। यः पिता स पुनः पुत्रो यः पुत्रः स पुनः पिता। एवं संसार चक्रेण कूपचक्रे घटा इव॥ जब ऐसा है तो यह उत्तम कंचन रूपी समय कांच से नहीं बदलना॥ जैसे हेमंत का शीत एक दो अग्नि की चिनगारी से दूर न होगा। तैसे ही मोहान्धकार से उत्पन्न हुआ अज्ञानमय पापपटल का वेग भी सामान्य साधनों से या एक दो व्यक्ति के नियमों से दूर न होगा। इससे संगठन की इस समय अत्यन्त आवश्यकता है और नियमों का सुधार भी होना चाहिये॥ इति

आगे इसी विषय की थोड़ी और समस्या है उसको भी जान लेना।

दोहा—ग्रही कि शोभा धर्म हैं, मुख्य अतिथि सतकार।
ब्रह्मचारी गुरु भक्त हो, बैखानषतपसार ॥

यती कि शोभा त्याग है, शुद्ध स्वरूप प्रकाश। अंतरंत्यागेवासवा, ऊपर विषय-विलास॥ जबऐसा है तो सन्यासी कुमारग क्योंपकड़े।

सवैया—तपसाधन नांहि कियो पहिले अरु दोष विषय के नहीं रगड़े॥ १ मन मानत है सो करें सब काम कहें श्रुति

शासन को झगड़े ॥ २ सब मानत हैं इस आश्रम को इस ही अभिमान से हैं जकड़े ॥ ३ अरु भेषाभिमान में डूब रहे सन्यासी कुमारग क्यों पकड़े ॥ ४

संन्यासी विषय रस भोगत हैं क्यों

सवैया—बलि के बकरा बलिदान को देखि तहूं आहार को भोगत हैं ज्यों ॥ १ मोरी के कीट बनैं बहु वार सो जानत हैं अपने मनमें च्यों ॥ २ वाचिक ज्ञान में भ्रान्त हुये संन्यासी विषय रस भोगत हैं त्यों ॥ ३ इस ही विधि दोष अनेकन हैं निर्द्वन्द्व तिन्हें समझाय कहें क्यों ॥ ४

शंका—यह तो वाचिक ज्ञान में भ्रांत हुये तो अवाचिक ज्ञान कौन और कैसा है।

समा०—जो दृढ़ अपरोक्ष अनुभव गम्य अवां मसनसगोचरम्, यतो वाचो निवर्तन्ते ॥ रितुमती पतिव्रता के समान परमानद स्वरूप ईश्वर के अनुग्रह और सद्गुरु की कृपा से प्राप्त होता है। और जो वही मनमुखी केवल पुस्तकों से ही रटकर याद कर अनाधिकारियों को भी सुनाया करते।

वेदांते परमं गुह्यं पुरा कल्पे प्रचोदितम्।
नाप्रशांतायदातव्यं ना पुत्रायाशिष्याय वा पुनः ॥

दोहा—कागद के गज वाजि रथ, कागद अनी बनाय।
शत्रु विजय हो जायगा, समझो सुमति बढ़ाय ॥
तिमि कागद के वाक्य से, अरु कागद का ज्ञान।
जगत विजय हो जायगा, विन सद्गुरु को मान ॥

शंका—इन दोनों प्रकार के ज्ञानों में कितना अंतर है।

समा०—शब्दार्थ में तो कुछ भी अंतर नहीं परंतु लक्ष्यार्थ में जैसे सुमेरु और एक सरसों का दाना।

शंका—शब्दार्थ में इनकी समता का क्या उदाहरण है।

समा०—जैसे एक राजरानी और दूसरी मेहतरानी। रानी शब्द दोनों में समान है परंतु जो राजरानी है वह किस तपधर्म से हुई और उसका भोग स्थिति मर्यादा और करतव्य क्या है। एवं जो मेहतरानी है वह किस पाप से हुई और इसका भोग स्थिति तथा करतव्य कैसा है। इसी प्रकार इन दोनों प्रकार के ज्ञानियों में भी घटा लेना। जो साधन सम्पन्न सद्गुरु की कृपा से स्वरूपानुसन्धान को प्राप्त हुआ इसी में ही निमग्न रहता है। और जो वाचिक मनमुखी ज्ञानी हैं वह तो कथा का प्रलाप कर भोगों को ही सम्पादन करते हैं॥

कुशला ब्रह्मवार्तायां वृत्ति हीनाः सुरागिणः।
देऽप्यज्ञानतया नूनं पुनरायान्ति यांति च॥

इसी प्रकार—अंतः साराहि गुरुवा स्वल्प वचामृतं प्रदाः।
मंद मंद हि गर्जंति प्राविष्टय्या पयोधरः॥

इस प्रकार वाचिक ज्ञान केवल कथन मात्र ही है जैसे पत्थर की नौका स्वयं डूबनेवाली है तो उस पर बैठनेवाला पार कैसे हो सकेगा इस से बड़ी सावधानी से रहना।

शंका—जब संसार त्रिकाल बाध्य है तो पार किसका किया जावे।

समा०—जब है नहीं तब तो काम क्रोधादि रागद्वेषादि नाना प्रकार के विकारों में ही रातदिन लगे रहना यदि होता तो जाने क्या करता। अनहोनी ही वस्तु दुःखास्पद होती है। जैसे रज्जू का सांप और ठूंठ का पिशाच। यह संसार, सुषुप्ति मुर्छादि में किसी को भी प्रतीत नहीं होता है परंतु इतने मात्र से कोई प्राणी मुक्त नहीं होता। बिना परहेज के जैसे औषधि रोग को दूर नहीं कर सकती और भी शीत की निवृत्ति अनिवृति पुरुष के आधीन है। इसी प्रकार बंध मोक्ष

भी पुरुष के ही आधीन है। इससे बिना इन्द्रियों का अति संयम किये तथा निर्विकल्प समाधि किये यह जन्म मृत्यु का प्रवाह न मिटेगा।

इज्याचार दमाहिंसा दान स्वाध्याय कर्मणाम्।
अयं तु परमो धर्मो यद्योगेनात्म दर्शनम्॥

इसके विपरीत—सर्वे ब्रह्म वदिष्यन्ति संप्राप्ते तु कलौ युगे।
नानुतिष्ठन्ति मैत्रेय शिश्नोदरपरायणः॥

समाहितायै प्रविलाप्य बाह्यं स्रोतादि चेतः स्वमहं चिदात्मनि त एव मुक्ताः भव पाशबंधैर्नान्येतु पारोक्ष्यकथा विधायनः॥

शंका—जबकि इस लोक के तुच्छ अतिघृणित भोग्य-पदार्थों से वैराग्य न होगा तो अति दिव्य भोगों से वैराग्य कैसे होगा। और जो वैराग्य न भया तो मोक्ष कैसे होगा। क्योंकि मोक्ष मार्ग अति वैराग्य को ही प्रतिपादन करता है। अत्यन्त वैराग्यवतः समाधिः॥ वैराग्यस्य फलं बोधो॥ त्यागे नैके अमृतत्वमानशुः॥ विषय विरक्तौ वासनाक्षयो॥ इत्यादि वैराग्य के विना वेदान्त का पठन पाठन क्या करेगा।

समा०—जैसे पतिविहीन विधवा स्त्री का शृङ्गार केवल व्यभिचार या विषयी पुरुषों के मन को ही आकर्षित करने के वास्ते होता है। उसी प्रकार बिना त्याग वैराग्य के वेदान्त का भी पठन पाठन भोगीं और मनुष्यादिकों के मन को ही रंजित करने को समझना चाहिये।

यस्तु भोगेषु भुक्तेषु न भवत्यधिवासितः।
अभुक्तेषु निराकांक्षी तादृशो भव दुर्लभः॥
यत्र यत्र भवे तृष्णा संसारं विद्धि तत्र वै।
प्रौढवैराग्यमाश्रित्य वीततृष्णः सुखी भवः॥
बाह्ये निषद्धे मनसः प्रसन्नतः मनः प्रसादे परमार्थ दर्शनम्।
तस्मिन्सुदृष्टे भव बन्धनाशो बहिर्निरोधस्पदवीविमुक्तिः॥

पद—जो अपनी आग बुझ जावे तो औरों की बुझा सकता।
यदि अपने में धधकती है तो दूसरे को जला देता॥
इसलिये

विड्वराहादितुल्यत्वंमाकाङ्क्षी स्तत्त्वविद्वान्।
सर्वधी दोषसंत्यागाल्लोकें पूज्यस्व देववत्॥

## संन्यास लक्षणम्

प्र०—संन्यासं पूजितो लोके किंकिंकर्माणि स उच्यते।
किं धर्मं पाल्यते स्वामिन्सोमे ब्रूहि जनार्दनः॥

उ०—सत्यवादी क्षमाधारी शून्य समाधि सदालयम्।
संसैशंका परित्याज्य सकारस्तस्य लक्षणम्॥

न्यास कामस्तथा क्रोधो मोहमाथा विचक्षरम्।
जीवितोऽपि मृतो भूत्वा नकारतस्य लक्षणम्॥

शिव शक्ति समायुक्तः यो पश्यति समागमम्।
सर्व संग परित्यज्य सकारस्तस्यलक्षणम्॥

## अवधूत लक्षणम्

अवधूतलक्षणं वर्णैं ज्ञातव्यं भगवोत्तमैः।
वेद वर्णार्थ तत्त्वज्ञै र्वेदवेदान्तवादिभिः॥

आशापाश विनिर्मुक्त आदि मध्यान्त निर्मलः।
आनन्दे वर्तते नित्यमकारस्तस्यलक्षणम्॥

वासनावर्जितायेन वक्तव्यं च निरामयम्।
वर्तमानेषु वर्तेत वकारस्तस्य०॥

धूलिधूसर गात्राणि धूर्तचित्तोनिरामयः।
धारणा ध्यान निर्मुक्तो धुकारस्त०॥

तत्वचिन्ता धृतो येन चिन्ताचेष्टा विवर्जितः ।
तमोऽहकार निर्मुक्तस्तकारस्तस्य० ॥

## परमहंस लक्षण

पंचकोश विनिर्मुक्त परमात्मसदाद्वयः ।
इतिनिश्चित्यवस्तुऽस्यपकारस्तस्य लक्षणम् ॥
रत्थ्यां च बहुवस्त्रषि कंथाकोपोनिर्मितम् ।
रागद्वेषादिनिर्मुक्तः रकारस्तस्य० ॥
मानमोह परित्यागस्तत्त्वबोधसदाऽभ्यसेत् ।
मंद मंदगतिर्यस्यः मकारस्यस्यः० ॥
हन्तेन्द्रियगणाः सर्वैः हस निर्मल चेतसः ।
हं िभक्तस्य पापेभ्य हकारस्तस्य ॥
सर्व चिन्ता विनिर्मुक्त समलोष्ठाश्म कांचनम् ।
सर्व द्वन्द्व परित्यागी सकारतस्य लक्षणम् ॥
परमहंसा वधूताः यतत्युक्तं समभ्यसेत् ।
सयंदबंधनिर्मुक्तः अन्यथा पतितो भवेत् ॥

येततसिद्धांत जितने प्रकार के संन्यास हैं सर्व मुक्ति के ही कारण है मुक्ति के नहीं ।

शंका—संन्यास कै प्रकार का है ।

समा०—कुटीचक, बहूदक, हंस, परमहंस के दो भेद हैं ॥ प्रथम जो ज्ञान के उपरान्त शिखासूत्र का स्वयं जल में त्यागकर अलिंग अवधूत कोटि का विद्वत् संन्यास है ॥ दूसरा वैराग्य के उपरान्त विधि निषेध को माननेवाला आचार्य कोटि का विविदिषा सन्यास है ॥ इसमें दण्ड ग्रहण का विधान है तुरीय, आतुर और गौण जिसको कोई जिज्ञासु मध्यमाधिकारी ग्रहस्थाश्रम में भी अभ्यास अंतरंग वैराग्य से कर सकते है ॥

अतः इस प्रेम मंत्र के अर्थ को भली प्रकार विचार कर

कवित्त—एक समय यमनेजाय विष्णु से प्रश्न कीन्हा,
कलि में संन्यास ले सब मुक्त हो जावेंगे।
हमको बताओ हम कौन-सा उपाय करें,
किसको पकरि फिर नाथ नर्क में पठावेंगे॥ ३॥
सुनके यमराज की विष्णु माया ओर चितै दीन्हा,
बोलि सक्ति उनको हम नियम से हटावेंगे।
सोच औ विचार कुछ तुम ना यमराज करो,
हौं जो माया तो उनको नर्क में ही गिरावेंगे॥ ४॥

शंका—गीता में कहा। प्राप्यपुण्यकृताल्लोकान्, और यहां नर्क में ही गिरावेंगे। यह अति विरुद्ध है।

समा०—गीता में साधन की शिथिलता कही है नतु भोगविषयों की प्रबलता। यहां पर—

दो०—भस्म लगाते थे प्रथम, संन्यासी महराज।
वंदन विन्दी अरगजा, यती लगाते आज॥
भाष्यकार के चित्र में, वंदनविन्दु देखाति।
चित्रकार के चित्त की, कुछ गति लखी न जाति॥
गाती अरु कोपीन कटि, केवल कंथाधार।
शूटर गंजी बूट अब, कोट कमीच शृंगार॥
पहिले ब्रह्मानन्द का, करत रहे सतसंग।
अब धन कंचन कांता पर, यती चढ़ाते रंग॥
केवल दण्ड त्याग कर, हो जाते स्वच्छन्द।
और भोग सब चौगुने, तेहिंको कहत न मन्द॥
गंगा सरयू नरमदा, यमुना जी के तीर।
इनहीं के तट विचरते, होते नहीं अधीर॥

सो अब रेलादिकन से, भ्रमण करत यतिराज ।
तबहूं वीत राग हैं, कलि में मुनि महराज ॥
दोष यतिन का है नहीं, कलिमल ग्रसित कराल ।
इसही से अब पड़ रहा, बारम्बार अकाल ॥
निर्द्वन्द्व के मन में चढ़ रहा, अब माया का रंग ।
क्षण क्षण में वस उठ रहे, विषय के प्रबल तरंग ॥

शंका—जब ऐसा है तो आपको भी नर्क ही होगा ।

समा०—महा० उद्योगपर्व मे भगवान् ने कहा है ।

मनसा चिन्तयन्पापं कर्मणा नाति रोचयन् ।
न प्राप्नोति फलं तस्येत्येवं धर्मविदो विदुः ॥

इस प्रकार मानसिक पाप नहीं होता जो देह इन्द्रियों से किया जाता है वही होता है ।

शंका—ज्ञानी को निर्दोष कहा है उसको पाप क्यों होगा ? मातापित्रोवधेऽपि न पाप भवति ।

समा०—तो निवृत्ति-मार्ग के ज्ञानी को विषयों का भोगना कहां लिखा है । उसको तो ऐसा कहा है ।

प्रपञ्चमखिलं यस्तु ज्ञानाग्नौ जुहुयाद्यतिः ।

हाँ वर्तमान के भी संन्यास का नियम कहा है ।

यदा संन्यासिनां भूमौ कुशीद ग्रहणेरतः । गृहिवन्मठच्चेत्र गृहनिर्माण तत्परः ॥ भविष्यन्ति च विप्रेंद्र तथैव प्रवलः कलिः ॥

बहुधाम सम्हारै योगी यती विषया हरि लीन्ह गई विरती ॥
परन्तु इस समय—

दो०—निर्द्वन्द्वाश्रम के उपर, परी विपत्ती घोर ।
दिन प्रति इस कलिकाल की, मार पड़ रही जोर ॥

तात्पर्य—कहीं-कहीं मनुष्य गारी देते और लड़के गारी भी देते और ढेला भी मारते तो भी उनके सम्बन्धी मना नहीं करते। सीखड़ बामन जी के स्थान से स्वामी ब्रह्माश्रम की कृपा से करीब आधी रात को गाढ़ी निद्रा में सोते से उनके भक्त ने जगाकर भगा दिया। अदलपुरा में एक माला ब्राह्मण ने कहा कि एक रोटी बचेगी तो कुत्ते को दे देंगे। पर स्वामी को न देंगे ऐसा कहा भी है। संन्यास धर्म निरतः भिक्षा प्राप्यंति नैवहि ॥ कहीं ब्राह्मण तथा ब्राह्मणी अपने को ब्राह्मण नहीं बताते कहीं ब्राह्मण के घर को चमार बताते। इसी प्रकार अकारण इस गंगा तट पर अब अनेकों उपद्रव प्राप्त हो रहे हैं। कुछ खेद तो होता परन्तु ॥ सम मान निरादर आदर ही ॥ के समान आनन्द की लहरें उठने लगतीं और अनुभव से निश्चय होता है कि सहायता पाकर निरबल भी बलवान को दबा देता है। जैसे तृण के संयोग से एक चिनगारी वृद्धि को पा जाती है और तृण के बिना प्रचण्ड अग्नि का ढेर बुझ जाता है। परन्तु भिक्षु गीत का स्मरण कर संतोष भी हो जाता है ॥ भा० ११ ॥ किंतु धर्म ग्लानि और ब्राह्मणादिकों की अनाधिकार चेष्टा से यह दशा हो जाती है।

सवैया—धर्म पै संकट घोर पड़ा,
इससे नहि चैन परै दिन राती।
खान औ पान निशा केरि नींद,
कथा सत संगहु की नहिं भाती॥
कासे कहूं अरु कौन सुने,
अस बातें अनेकन आतीं औ जातीं।
करुणा निधि को हित जानि बिचार,
लिखी निर्द्वन्द्व सुधारि के पाती॥

दो०—सुनी नहीं बहु तक कही, अब हो रहे निरास।
जाने हैं हरि नींद में, या कुछ करत विलास॥

निवृत्ति मार्ग के बीच में, शंका उपजी आय।
बरणत अनुभव शोधिके, प्रभु में चित्त लगाय ॥

पद—भोगियों के भोग का है कौन उत्तम तप भजन।
तिसके कारण भोगते ऐश्वर्य नाना विध व्यसन ॥
औ हमारे भजन तप में कौन सी है नीचता।
जिसके कारण दिन पै दिन अब बढ़ रहो है अनर्थता ॥
समझाय कर कोई कहो तो चित्त को कुछ शांति हो।
बोध हो जावे हमें अरु वाद परमानन्द हो ॥

शंका—वह कौन सुख जिसके आगे कामना नहीं। तथा कौन जीवन जिसके आगे मृत्यु नहीं और कौन तृप्ति जिसके आगे आशा नहीं।

स०दो०—सुख सागर सुख निधि सुखद, सुख समूह सुख धाम।
सुख स्वरूप निर्द्वन्द्व सुख, जहाँ न कोई काम ॥

पद—जान लिया जिस जीवन में हम कौन कहाँ से आये हैं।
बस जीवन वही सुफल जानों हम गएन कहूं से आये हैं ॥
जो निजानन्द की तृप्ती में हो तृप्त उसी में लोभाना है।
यह पद पियूष अनुभव करिके फिर किसकी आश बढ़ाना है ॥
जो विषय विरक्तों ने त्यागे भोगी उनमें लपटाते हैं।
ज्यों नर मुख से वमन करें अरु श्वान स्वाद से खाते हैं ॥

शंका—संन्यास के मुख्य ४ लक्षण वर्तमान के और ४ परम्परा के कौन हैं।

समा०—अति सुकुमारता, अति ऐश्वर्य, अति प्रतिष्ठा और अति भोगों में आशक्ति ये ४ वर्तमान के हैं। अति वैराग्य, अति तैल धारा वत्स्वरूपानुसंधान, अत्यन्त देहाभिमान की निवृत्ति और अति चित्त की शान्ति ये ४ परम्परा के हैं।

शंका—भक्ति भी संन्यास के अंतर्गत होने से इसका अंग है तो।
केहि कारण भक्त कुभक्त भये।

समा० सवैया—कलिकाल कराल के चक्कर से,
निज साधन को अब भूलि गये।
सुख चाहत हैं इन नेत्रन से,
पै कही गुरु सीख पै लात दये॥
धृति शांति दया को विसारि भला,
अब काम कलाप को गोद लये।
इस ही विधि और अनेकन हैं,
यहि कारण भक्त कुभक्त भये॥
उलटे व्यवहार सबै इसके,
अनरीति प्रतीति न नीति नई है।
अपिमानित होत सभी धर्मध्वज,
पापिन की अब कीर्ति भई है॥
पाप प्रचंड कि बांह गही,
अरु धर्म के ऊपर लात दई है।
कलिकाल कराल कि देखि दशा,
जानै याही से नाथ समाधि लई है॥
या हरि क्षीर समुद्र में सोवत,
या कहुँ खेल रमा से मचाये।
शंकर योग समाधि में हैं,
या पारबती सँग नृत्य रचाये॥
अरविंद तनय जाने काह करे,
अदिती सुतहू कहुँ नेह लगाये।
यहि बार न कोई सहायक है,
तेहिसे कलिकाल सभी को सताये॥

मिथ्या वाद विवद बढ़े औ बढ़ो निवृत्ती में प्रपंच अगाधा।
अनुरागी विरागी औ त्यागिन पै अब आनि लगी हैं अनेकन बाधा॥
नहिं धीर धरैं न विचार करैं उन त्यागि विराग प्रपंचहि साधा।
निर्द्वन्द्व के राग विराग बढ़ा औ बढ़ो प्रभु प्रेम प्रवाह अगाधा॥
निवृत्ती में आती वैराग कहा इसके बिन ज्ञान कहो कस होता।
शुक सनकादि यती सगरे तिनकी गति जानि अभै क्यों सोता॥
फिरि दोनों पक्ष बिना खग ज्यों गहि मारग जाति समय कस खोता।
निर्द्वन्द्व बिना भगवन्त कृपा वैराग्य भयो न यहै सब रोता॥
षट चारि बिकार करैं जब लौ एक मारि न पायो तलौ सुख नाहीं।
दो केरि चोट खराब करे मुरहा नित पाँच जो बाढ़त जाहीं॥
येते विकार जहाँ जबलौ तबलौ एक नारि कहो केहि माहीं।
निर्द्वन्द्व यही अबतो ठहरी गुरु भक्ति बिना बनि हैं कुछ नाहीं॥
कुबिजाने बड़ो तप कौन कियो प्रभु मोहे सुचन्दन लेप किये से।
बिप्र सुदामा ने काह कियो हरि तोषे हो तण्डुल भेट दिये से॥
यमदूतों से नाथ छोड़ाय लियो है अजामिल केवल नाम लिये से।
इस काल कराल कि दीन दशा प्रभु जानत हो अपनेहि हिये से॥
शस्त्र कटे नहिं आग जरे जल डूब सके नहिं बात सुखाना।
तीनहु काल चहू युग में एक आतमदेव सो सत्य कहाना॥
तेहि त्यागि कुभोग विषय में लगें मानों अमृत के सर से हटिआना।
सो नर कूकर सूकर से मन मोद भरे ज्यों हाड़ चबाना॥
शुभ है उपदेश सुसज्जन को मति मन्दन से न कछू बनि आई।
वे तो सुधर्म की राह चलें यमराज के देश को कौन सिधाई॥

बिधि आनि महेश सहाय करें शुभ धर्म सुने अति देह तपाई ।
निर्द्वन्द्व यही अब लो ठहरी अति भोगिन से तो कछू न बसाई ॥
शुभ उपदेश कहाँ पै रुके सो विचार करौ मन मोद बढाई ।
ज्यों कर पूर रहे कदली बन या कोइ पात्र के मांहि रहाई ॥
त्यो निर्द्वन्द्व के वाक्य विचार पै ध्यान धरै मद मान हटाई ।
मन वानी औ बुद्धि विसुद्ध जहाँ उसही में रुके नहिं जाय नसाई ॥

समस्या—बहुरूप अरूप सो व्यापक कैसे

लखि नाहीं परै न कहै कोइ रूप सदा सब में नभ व्यापक जैसे ।
मन वाँणी क हेतु न बुद्धि सकै धसि कोई कहे गुण गूँगे क तैसे ॥
इस ही विधि शब्द अनेकन हैं बहु रूप पै शंका बनी रही वैसे ।
रवि शीकर बिन्दु न देखि परें बहु रूप अरूप सो व्यापक ऐसे ॥
अथवा नवनीत रहैं पै मैं मथि पिण्ड के रूप में आवत जैसे ।
मृतिका घट चीवर चक्क्र के योग कुलाल विचित्र बनावत वैसे ॥
सो माया के योग से व्यापक ब्रह्म अरूप भयो बहुरूप में तैसे ।
तब हूँ कुछ व्यक्ति न जानत हैं बहु रूप अरूप सो व्यापक कैसे ॥

पं० शिवदत्त ने कहा—

नभ व्यपक औ बिनरूप लहै बहु रूप उपाधि संयोग से जैसे ।
शिवकंचनता बिन रूप लहै बहु रूप सुव्यापक भूषण तैसे ॥
तिमि ब्रह्म अरूप सुव्यापक हो बहुरूप भयो श्रुति भाषत ऐसे ।
करि तर्क कुतर्क विमूढ लरैं बहुरूप अरूप सोव्यापक कैसे ॥

रूप न रेख न अंग अपंग विना वपु व्यापक हैं सब में ही।
जेहि जानि जहाँ को तहाँ मिलवै फिर एक अकेल कहावत वे ही ॥
सो जाने वनै देखे न वनै कहते न वनै समुझावत केही।
तेहिका ब्रज चन्द्र किशोर कहैं भरि प्रेम प्रवाहक आनन्द लेहीं ॥

## साधन छन्द

जप करै तप करै किसी से न द्वेष करे, हरिको भजन करि धरम करत है।
पूजा करे पाठ करे आतमा विचार करे, गुरूजी का ध्यान धरि आनन्द भरत है।
इन्द्रिन को बस करि मनको दमन करि, साधु सतसंग करि धीरज धरत है।
बुद्धि से विचार देखो सुनो हो मुमुक्षू जन, ऐसो जो करे सो भवसागर तरत है।
विवेकसे विरागहो विरागसेउदास हो, उदास उस्कनाम है जो किसी में न राग हो।
राग हो तो काम हो औ काम में जहान हो, जहानमें प्रपंच जैसे सुक्ती रजत भान हो
भान हो तो नाम हो अरु नाम में अज्ञान हो, अज्ञान का विवेक कर आपहीकाआपहो
आप तो समान हो समान में निस्काम हो, विचार निर्द्वन्द्व ऐसे आत्माक ज्ञानहो।
एक ब्रह्म है तो फिर द्वैत क्यों प्रघत होति, याहीका तो नाम अज्ञान सो कहत है।
जैसे सुक्ती बीच माहि रजतको भान होति, बारिमें तरंग फेन बुल्ल सो रहत है।
रज्जू में सरफ अरु मृत्तिका में घट होति, रस में शकर अरु सोने कटक है।
ज्ञान से विचार कर मिथ्या तिरोधानकर, देख निर्द्वन्द एक आतमा झलक है।
चौ०—कलि प्रभाव कुछ और जनावा। तब आगे हम लेख बनावा ॥
भजन—दुरगति अधिक अधिक दर्शाई
ना कोइ माने गुरू पिता को ना कोइ सुजन सगाई।
अतिथि भाव अरु साधु संगति इनकी मूल नशाई ॥दुरगति०॥

कलि कल्मष औ दुराचार अति दिन प्रति बढ़ते जाई।

तनपोषक शोषक विराग के यति तपसी देखलाईं ॥दुरगति०॥

यहि कलिकाल कराल काल बस विपदा अधिक देखाई।

दुःख दरिद्र औ शोक रोग सब दिन प्रति बढते जाई ॥दुरगति०॥

खान पान अरु सदाचार वह देखियत अब कुहुँ नाहीं।

नीति विरोध नियम सब ठानत श्रुति पुराण कोउ नाहीं ॥दुरगति०॥

अब गति कहि न जाति कुछ भाई

देखियत स्वान सिंह को डपटति अधिक अधिक गुर्राई।

अर्जुन भील दशा मन गुनकर नाहीं धीर घबड़ाई ॥अब०॥

किसी के घर में मूषक लागें लीन्ह बिलार बोलाई।

आवा स्वान झपटि तेहिका सो गयो भाग सब खाई ॥अब०

हुइहैं बहुत दुर्दशा भारी यह अनुभव में आई।

धर्मशील कोइ श्रुति पथ पालक तिनके प्रभु तुमहि सहाई ॥ अ०

निर्द्वन्दाश्रम समुझि मनहि मननाहीं खेद जनाईं।

वह भी रहा न यह भी रहिहै तौकाहे कदराईं ॥ अब०

प्रमाण—द्विषन्ति पितरं पुत्रा गुरु शिष्य द्विषन्तिच।

पतिं च वनिता द्वेष्टि कलौ पापिनि चागते।

न वस्तव्यं त्वये वेह मया त्यक्ते मही तले।

जनोऽधर्मरुचिर्भद्र भविष्यति कलौ युगे॥

त्वं तुसर्वं परित्यज्य स्नेहं स्वजन बन्धुषु।

मय्यावेश्य मनः सम्यक्सम दृग्विचरस्व गाम्॥

भावार्थ—इसी प्रकार संन्यासी मात्र को भी विचार करना कि अपने प्रिय भक्त उद्धवजी से श्रीकृष्ण कहते हैं कि हे प्रिय दर्शन हमारे त्याग देने पर इस भूमि पर तुमको नहीं रहना चाहिये क्योंकि कलयुग के आ जाने पर सर्व मनुष्यों की अधरमें रुचि हो जावेगी। इससे तुम सर्व अपने स्नेही बंधु-वर्गों अर्थात् भोगों को त्यागकर अपने मन को मुझ परमानन्द आत्म-स्वरूप में लगाकर बड़ी सावधानी से समदृष्टि कर भूमि पर विचार कर निस्पाप बद्रिकाश्रम को चले जाओ और मंत्र श्लोकों का अर्थ विस्तारमय से न किया क्योंकि दाता स्वल्प सम्पत्ति का है यदि जानना हो तो किसी विद्वान से समझ लेना।

कवित्त—धर्म के हितैषिण के बादर से छाय रहे,

तबहूँ धर्म को बहुल विपदा सताई है।

कोप प्रचण्ड कलिकाल ने जमाय राखा,

घटन की कोई अभी अवधि ना जताई है।

स्वार्थी लवार झूठ पातकी गुलाम धनके,

इनहीं की चारो ओर बजति वधाई है।

उज्वल पियूष परम प्रभु को पवित्र यश,

तापै लवारन हरताल ही लगाई है।

सुनैगे ज्ञानिन की पै मानैं नाहि एकौ बात।

यही अब भारत में सुख का सहारा है।

प्रस्न करें कैसे कल्याण के भागी होंय;

काम करें दुःख का नीच आचरण पसारा है।

शास्त्र को न मानें वृद्धाचर्ण को न मानें,

अरु गुरू की नमानि मनमानों अधारा है।

सुनों बात साँची यहै नर्क की निशानी है,

समुझ जाउ भाई निर्द्वन्द्व अस विचारा है।

योगी बहु देखे ध्यान धारणा समाधि करें,

आसन को मारि पै आस मारि ना पाई है।

सिद्ध हू देखे जिनकी सिद्धि के पताका उड़ें,

प्रबल भोग विषयों की आस तिन लगाई है।

ज्ञानी सिद्ध ध्यानिन की सरायँ सुनी जहाँ तहाँ,

राग भोग नृत्य हू की तिन मैफिल जमाई है।

देखे निर्द्वन्द्व ये माया के प्रचण्ड द्वन्द्व,

देखा कोइ विरक्त जेहि आश धोय सब बहाई है।

उदाहरण—जैसे स्वामी मुनीश्वरानन्द सरस्वती श्री स्वामी करपात्री जी के शिष्य जो त्याग वैराग्य स्वरूप संन्यास के सर्व नियमों को पालने वाले अपनी परम उज्ज्वल कीर्ति को यहां छोड़कर सारूप्य या कैवल्य मुक्ति को प्राप्त हो गये। इससे वही विषय बुद्धि के सन्मुख फिर आ जाता है। एसा संन्यासी अब कोई न होवेगा।

पद—शकर मील की नल का पानी को को यम घी खाते लोग।

बरफादिक औ दवा बिदेशी इन हूँ का करते उपभोग॥

कहो तो उन अब का नहि खाया किस के उच्छिष्ट से बचगग लोग॥।

इस विधि और अनेकों बातें तिनहूँ का कुछ करो विचार॥

देखो मातृ भूमि के भीतर अधिक बढ गया भ्रष्टाचार॥

इससे परम विचारनीय है। जैसे वृक्ष की जड़ काटकर कोई डाली पत्ते सींचकर फल चाहे तो उस अंधे को सोचना चाहिये कि वृक्ष तो

जड़ के काटते ही सूख गया फल कैसे लगेगा। इसी प्रकार संन्यास तथा बोध का मूल शुद्धाचरण खान पान सदाचार का उच्छेदन कर केवल वैखरी वानी से वेदान्त को रटकर मोक्षरूपी फल को कैसे प्राप्त होंगे।

वग्वैखरी सब्द झरी शास्त्र व्याख्यान कौशलम्।
वैदुष्यं विदुषां तत्वत्भुत्त्येनतु मुक्तये॥

और भी जैसे हंस तथा बगुले का संग न होगा तैसे ही ज्ञानी विरक्त बोधवान का और भोगी का भी सतसंग न बनेगा। यदि मोक्ष की पूर्ण जिज्ञासा होवे तो। समाधि निर्धूतमलस्य चेतसो। आहार शुद्धौ सत्त्व शुद्धिः॥ बुद्ध्या विशुद्ध्या युक्तो। विविक्तसेवी लघ्वाशी॥ आदि साधन सम्पत्ति से मोक्ष को प्राप्त करना चाहिये। जब स्थूल व्यवहार केवल कथन मात्र से सिद्ध नहीं होता तो अति सूक्ष्म परमार्थ में क्या कहना। अतीव शूक्ष्मम् परमात्मतत्वं

पद—चेतै कोई चहेन चेतै हमने फरज वजाया है।
करि के विविध उपाय आज शुभ मारग को दरशाया है॥
चेतो तो बेड़ा पार लगे नहि घोर नर्क में जाना है।
यह मनुष्य का देह कहो क्या बार बार फिर पाना है॥

दुर्लभो मानुषो देहो ह्यहो देहः सुदुर्लभः।
तत्राऽपि संन्यासस्यैवोत्कृष्टत्वं श्रूयते॥

दोहा—दोष हमारा है नहीं, हम कुछ कहते नाहिं।
जस सद्ग्रंथन में सुना, सो वरणा यहि माहिं॥
ब्राह्मण सम कोइ वर्ण नहिं, यति सम आश्रम नाहिं।
यदि इनसे गिर जायगा, तो बार-बार पछि ताहिं॥

गई सो अब आती नहीं, रही सही सो जाति।
इससे अब भी चेतियो, वनी अविद्या खाति ॥
मोह निशा को त्याग के कर अपने मन चेत।
काल चिड़ैया चुन रही आयु रूपी खेत ॥
आतम सुख के वास्ते, करना कोटि उपाय।
यह्तिन से जो गिर गया, तो बरा-बर पछताय ॥
आतम सुख पारस मणि, विषय सुक्खजिमि कांच।
जिसको मणि पारस मिलि, सो मणि काचन जांय ॥
ग्रन्थि छुटी अज्ञान की, भए सब संसय छीन।
सात चित बुध आनन्द का, प्रेम पियाला पीन ॥
परम प्रेम को पाय के, कीजे कुछ उपकार।
जस सद्ग्रन्थन में लिखा, तैसा करो प्रचार ॥
मूल कटी जाती यहां, धर्म नीति की आज।
फिर पछता कर क्या करे, जब बिगड़े सब काज ॥
धर्म करत अरु नियम नहिं, इसे विचारो आप।
विना नियम का धर्म जो, समझो पूरा पाप ॥
बनी नशाना सहज है, सब कोइ देइ नशाय।
बिगड़ी बनाय कठिन है, कोइ धीर समुहाय ॥

प्र०—आत्मार्थं जीवलोकेऽस्मिन्को न जीवति मानवः।
परं परोपकारर्थं यः जीवति सजीवति ॥

परोपकार शून्य स्यधिंग्मनुष्यस्य जीवितम्

भावार्थ—इस जीवलोक में अपने वास्ते कौन मनुष्य नहीं जीता अर्थात् सब ही जीते हैं। परन्तु जो परोपकार के वास्ते जीता है वास्तव में वही ज़ीता है और जो परोपकार से रहित है उस मनुष्य जीवन को धिक्कार है। इससे कुछ उपकार भी करो।

अभ्यास भजन—मन भजले विश्वम्भर को नहि फेर जन्म लेना है

अनादि सनातन है अबिनासी नित्य निरन्तर घट घट बासी।
नेति नेति जो वेद बखानें सो सब भ्रम का साक्षी ॥ मन भजले०
मिला रहे औ सब से न्यारा दूध मद्ध्य ज्यों पानी।
हंस बुद्धि के कोइ कोइ ज्ञानी समझैं मुनि विज्ञानी ॥ मन भजले०
सोहं अहं ब्रह्म के ज्ञाता तत्वं पद पहिचानी।
असि पद से जो करी एकता मोक्ष कि परम निशानी ॥ मन भजले०
निर्द्वन्द्वाश्रम द्वन्द्व नहीं कुछ करि विवेक पहिचानी।
नभनीलिमा कहत हैं जैसे तैसे द्वैत बखानी ॥ मन भजले०

दादरा—कही मानों गुरू की करूं बिनती

कही मानों गुरू कि वार वार कहते हैं।
असत कर्मों को त्यागि हरि का नाम जपते हैं ॥
उन्हें यमराज के वह दूत सदा डरते हैं।
भूल कर के न कभी बात उन्से करते हैं ॥
यह बानी में आनी मेरे विनती ॥ कही मानों

उन्हें भगवान फिर अपने हि निकट रखते हैं।
नर्क औ स्वर्ग के धक्कों से वह नर हटते हैं ॥

जो हरि नाम के प्याले को हर दम चखते हैं।

वही भव चक्कर के झंझट से लोग तरते हैं॥

यह वानी अमानी करे विनती॥ कही मानों गुरू की

प्रमा—कर्ण धारं गुरुं प्राप्य तद्वाक्यं प्लववद्धढम्।

अभ्यास वासना सत्त्या तरन्ति भव सागरम्॥

गु सब्दस्त्वँ घकारस्य रु सब्दस्तन्निरोधकः।

अंधकार निरोधित्वात् गुरुरित्यभिधीयते॥

॥ इति यती तथा ब्रह्मचारी सुधार संगठन समासः॥

पद—यह लेख गद्य रु पद्य भाषा संस्कृत गाथा भई।

सादर समर्पण ईश को जगदीश जो करुणा मई॥

भवखेद छेदत द्वन्द्व तोड़त शरण जेहि उसकी लई।

सो वेद वाणी से परे अस तत्त्व वेत्तन कह दई॥

यदि जो भूल से कुछ अयोग्य लेख हो गया हो महात्मा उसको क्षमा कर भूल और गल्तियों को सुधार ले।

श्री स्वामी वंशीधराश्रम जी, श्री स्वामी मुक्ताश्रम और स्वामी अचिन्त्यबोधाश्रमादि और कई एक ब्रह्मचारियों की स्वीकृति कि यह प्रकाशित हो जावे।

दोहा—काशी कशक मिटावनी है परम मुक्ति का धाम।

यदि हो कछुक विराग जो तो आवे यह काम॥

संतोषामृत पानेन ये शान्तस्तृप्तिमागताः।

आत्मरामा महात्मनस्ते महा पद मागताः॥

॥ इति॥

# द्वितीय भाग

## निर्द्वन्द्व विचार सार

पुरान्तक हरो रुद्रः कंस केशी हरो हरिः ।

चण्ड मुण्ड हरा चण्डी सर्व द्वन्द्व हरो गुरुः ।

सवैया—पद पंकज देखन को चित मोर सदा अनुराग किया करता है ।

पै काह कहूँ कहि जाति नहीं पद प्रेम शुधा सुपिया करता है ॥

करुणानिधि दीन दयाल प्रभू तुम्हरो नित नाम लिया करता है ।

निर्द्वन्द्व ततः गुरुः वाक्य उदार विराग पै ध्यान दिया करता है ।

मन्यन्ते ये स्वमात्मानं विभिन्नं परमेश्वरात् ,

नते पश्यन्ति तं देवं वृथा तेषां परिश्रमाः ॥

अमुक्तेर्भेद एव स्यात् जीवस्य च परस्य च,

मुक्तस्य तु न भेदोऽस्ति भेदहेतोरभावतः ॥

भावार्थ—जो अपने आत्मा को परमेश्वर से प्रथक मानते हैं वह उस परम देव को नहीं देख सकते उनके सर्व परिश्रम अर्थात् कर्तव्य मिथ्या हैं । इसी प्रकार जीव और परमात्मा का भेद अमुक्त दशा में है और मुक्त दशा में तो भेद का नाम ही नहीं क्योंकि भेद का हेतु अज्ञान उसका अभाव है ।

शंका—तो निसंग निराकार निस्क्रय निस्प्रपञ्च आनन्द घन अद्वितीय परमतत्व में प्रपञ्च का सम्बन्ध कैसे हो गया ।

समा०—अद्ध्यारोप से

शं०—"अद्ध्यारोप किसको कहते हैं ।"

समा० अधिष्ठान में भ्रमात्मक बुद्धि से अन्य की प्रतीति जैसे शुक्तिकादि में भ्रम से रजतादि की प्रतीति। इसी प्रकार अधिष्ठान चेतन में अविद्या अज्ञान से भ्रमात्मक प्रपञ्च को अध्यारोप कहा है।

शंका—तो इसकी निवृत्ति कैसे होवे।

समा०—अपवाद से।

शंका—अपवाद का क्या स्वरूप है।

समा०—उस भ्रम को विचार द्वारा बाधितकर या समीपवर्ती होकर प्रकाशात्मक बुद्धि से कल्पित रजतादि का बाध कर शुक्तिकादि को जान लेना। इसी प्रकार विवेक वैराग्यादि साधन सम्पति के द्वारा और तीव्र मोक्ष की जिज्ञासा से पूर्व कहे हुये के समान सद्गुरु के समीप वर्ती होकर श्रद्धा भक्ति संयुक्त कुछ काल प्रकृया सहित वेदान्त का श्रवण मननादि से जो भ्रमात्मक यह समझ में न आया माया कल्पित। मायामयः प्रपञ्चोऽयमात्मा चैतन्यरूपधृक्। एतत्प्रमाण सर्व प्रपञ्च मरु मरीचिका वत् दृढ़ ब्रह्मात्मैक। अपरोक्ष ज्ञान से बाधित कर परमानन्द निर्विकल्प समाधि में स्थिति का नाम, अपवाद है। अध्यारोपापवादाभ्याम् निष्प्रपञ्चप्रपंच्यते॥ इति॥

शंका—जब एक रस समान तृकालाबाध्य आत्मा जैसे जीवित शरीरों में चेष्टित होता है। वाह सर्व अंग उपांगों के होते हुए मृतक शरीर में चेष्टित नहीं होता है तो आत्मा समान कैसे कहा गया।

समा०—उसके दो रूप हैं एक सम दूसरा विशेष। अंतः करण विशिष्ट चेष्टा का हेतु तथा अंतः करण रहित अचेष्टित कहा है। जैसे दर्पण में बिम्ब प्रतिबिम्बित होता है परन्तु उसके पृष्ट भाग में सिन्दूर लगा यदि छोड़ा दो तो फिर उसमें बिम्ब प्रतिबिम्बित नहीं होता। इसी प्रकार जब तक स्थूल शरीर के साथ सूक्ष्म शरीर का सम्बन्ध है तब तक चेष्टा होती है और जब यह विलग हो जाता है तो चेष्टा नहीं होती। इसी तरह आत्मा एक रस समान सर्व व्यापक मृतक शरीर में चेष्टित नहीं

३

होता और न किसी का विरोधी है। जैसे काष्ठ का सामान्य अग्नि किसी का विरोधी नहीं है ॥ इति ॥

शंका – अनादि अविद्या के संयोग से कूटस्थ असंग आत्मा ही जीव भाव को प्राप्त हो गया। जैसे दूध का दही। तो फिर यह जीव अपने वास्तविक स्वरूप को कैसे प्राप्त हो सकता है।

समा०—परिणामी वस्तु मिथ्या और असत होती है इससे यह दृष्टांत न घठ कर विवर्तवाद ही इसमें प्रमाण है। अथवा जैसे पृथ्वी से निकला ताँवा और पृथ्वी से ही निकली औषधि दोनो का कारण पृथ्वी ही है। जब तक उस सुवरणा कार औषध के साथ ताँवे का विधिवत संयोग नहीं होता तभी तक तावा है। वाद जब रशायनी ने विधिवत उन दोनों का किया योग और अग्नि में दिया पुट तो तांवा उसी दम सुवरण होकर सुवरण की ही शोभा का प्रकाश करता है। इसी प्रकार सर्व का मूल कारण परमात्मा तिसकी ही अविद्या सक्ति में प्रतिबिम्बित हो वही देव कूटस्थ आत्मा घटाकाश में जलाकाशवत जीवत्व भाव को प्राप्त हुआ सुवर्णाकार औषधि वत विद्या और रसायनीवत आत्मज्ञानी के समीपवर्ती से और विद्या के संयोग तथा महावाक्य के अभ्यास से इसका भी जीवत्व उड़ जाता कि कहाँ चला गया जैसे सुवर्ण में तांवेत्व की भावना नहीं होती। इसी प्रकार इसमें भी फिर जीवत्त्व की गंध भी नहीं फुरती। अथवा भृंगी कोट न्यायवत जब मकड़ी भृंगी की भावना कर भृंगी हो जाती है तो फिर वह कुछ भी करे कि हम मकड़ी फिर हो जावें परन्तु नहीं होती। इसी प्रकार यह जीव उस शुद्ध-बुद्ध-मुक्त परमानन्द का ही केवल ध्यान करने से जब उसी का रूप हो जावेगा तो फिर यह जीवत्त्व को कैसे हो सकेगा नहीं हो सकेगा ॥ इति ॥

दो०—पंच कलेशन त्यागके, षट् उरमी तज देह।
श्री अनन्त भगवान का, सो अनुभव कर लेह ॥

शंका तो फिर इस प्रकार के आत्मज्ञानी में कुछ कर्तव्य तो नहीं रहता।

समा०—हाँ कर्तव्य तो नहीं रहता परन्तु कुछ आश्रय रह जाता है। जैसे कोई राजा सम्राट पद का इच्छुक अस्त्र-शस्त्र कवचादि सर्व युद्ध की सामग्री से युक्त होकर दिग्विजय को तैयार हुआ। जबतक दिग्विजय समाप्त नहीं होता तबतक वह युद्ध की कोई सामग्री को नहीं त्यागता। बाद जब दिग्विजय समाप्त हो गया और इसकी विजय हो गई तो उसी दम कवचादि सर्व युद्ध की सामग्री को त्याग। दृढ़ किला में स्थित होकर और बृहत् सेना के आश्रय से अपने सम्राट पद को सुखपूर्वक भोगता है। यदि इन दोनों को त्याग दे तो तत्काल ही इसके शत्रु चारों ओर से धावा कर देवें और इसको उस पद से च्युत कर देवें तो राजा जैसे अत्यन्त दीन हो जावेगा। इसी प्रकार यह जीव सम्राटरूप परमानन्द कैवल्य पद का जिज्ञासु अपनी नित्य नैमित्यिक समदमादि श्रवण मननादि साधन सम्पत्ति से सर्व माया प्रपंच को मिथ्या निश्चय कर अपने स्वरूपानुसंधान में स्थित हो गया तो इसको भी कुछ कर्तव्य नहीं रह जाता। नैवास्ति किञ्चित्कर्तव्यः। केवल दृढ़ बोधरूपी किला और तीव्रतर वैराग्यरूपी सेना का ही आश्रय रह जाता है। यदि इनको यह भी त्याग दे तो काम क्रोधादिक शत्रु इसके भी उस स्वरूपानुसंधान परमानन्द रूपी सम्राट को आच्छादित कर इसको भी अति दीन बना देंगे। इससे बोधवान को बहुत सावधान रहना चाहिये।

प्र०—काम क्रोधौ लोभ मोहौ देहे तिष्टंति तस्करः।
हरन्ति ज्ञान रत्नानि तस्माजाग्रहि जाग्रहि॥

शंका—जब सर्व ब्रह्म ही है॥ ब्रह्मैवेदम्सर्वम्॥ तो काम क्रोधादिक कैसे?

समा०—बात तो ठीक ही है परन्तु जड़भरत और वामदेवादिकों के समय क्या यह सिद्धान्त न था या वह मूर्ख थे जो इन्हीं के कारण नर्क रूपी गर्भ भोगना पड़ा। ज्ञानी को जन्म लेने में आगामी प्रतिबन्ध कहा है। अथवा

कामेन विजितो ब्रह्मा कामेन विजितो हरिः।

कामेन विजितो शम्भू शक्रः कामेन निर्जितः॥

आवृतं ज्ञान मेतेन ज्ञानिनों नित्य वैरिणाः॥ इति

शंका—प्रमाण से भी सिद्ध है और सुषुप्ति में इसकी उपलब्धि भी नहीं होती तथा सब कहते भी हैं कि जगन्मिथ्या स्वप्नवत् है। परन्तु स्वप्न के पदार्थों में कोई नहीं आसक्त होता है और इस जाग्रति जगत के पदार्थों में तो बहुतों की अति आसक्ति देखने में आती है तो यह जगन्मिथ्या कैसे?

समा०—बहुतों की आसक्ति भी नहीं है इसीसे यह मिथ्या है।

शंका—जिनकी आसक्ति नहीं है वह भाग्य के फूटे कोई महा दरिद्री होंगे जिनको कोई पदार्थ प्राप्त ही न होता होगा ऐसे अनमिले के आसक्ति-रहित त्यागी बहुत हो सकते हैं।

समा०—तो बताओ मरू-मरीचिका का जल किसको नहीं प्रतीत होता है। एक जंगली कस्तूरी हिरण को छोड़ और किसकी आसक्ति है और वह आसक्त होकर क्या लाभ उठाता है कि जल के लोभ से भागता २ अंत में मर ही जाता है। इसी प्रकार इस मिथ्या संसार के भोग पदार्थों में जो आसक्त है या होगा उसको भी इस हिरण के ही समान जानों। अन्त में इसकी भी वही दशा होगी। जो काले सर्प को रस्सी जान पकड़ कर मर जाता है। इसी प्रकार इस संसार का पकड़ा उचाउच योनियों में ही भ्रमता रहेगा। अथवा सिनेमा वत्पश्य तो विश्वम। है कुछ नहीं परन्तु एक पुरुष और एक यंत्र के

संयोग से एक वस्त्र के आश्रय सर्व कुछ देख पड़ता है। वाद जब पुरुष यंत्र के संयोग से हट जाता है तो कुछ भी नहीं देख पड़ता। तो भी बहुत लोग उसमें आसक्त होकर धन और समय को नष्ट करते हैं। इसी प्रकार यह जो कुछ देख रहा है सो भी यंत्र वत्प्रकृति और पुरुष वत्परमेश्वर के संयोग से महातत्व के आश्रय से प्रतीत होता है। यदि क्षीर नीर वत्प्रकृति पुरुष का विवेक करले तो यह प्रपंच शुक्तिका में में रजत के समान आभास मात्र ही रह जाता है और जो पुरुष वही विरक्त ज्ञानियों का स्वरूप है। और इसके अप्रतीत होने से जीवन मुक्ति का सुख न रहेगा जैसे सुषुप्ति।

असन्तोऽएडादयो भान्तु तद्भानेऽपीहं का क्षतिः।

शंका स्वप्न मिथ्या कैसे हो सकता है राजा लवण को स्वप्न में चाण्डाल होकर जिस देश में चाण्डाली के सम्बन्ध से जो पुत्रादिक प्राप्त किये थे। वह जाग्रत में उसने सबको देखा था और जो स्वप्न में स्त्री पुरुष का सम्बन्ध मिथ्या परन्तु वीर्यपात जाग्रत वत सत्य हो जाता है और अत्र भी स्वप्न का विषय कहीं २ जाग्रत में देखने को आता है तो स्वप्न मिथ्या कैसे।

समा०—जो माया की दुर्घट अघटित पटीय घटना उसमें क्या नहीं बन सकता है जब उसने एक चेतन असंग परं ब्रह्म को जीव, ईश्वर बना लिया तो जाग्रत का स्वप्न में और स्वप्न का जाग्रत में बना लेना कौन कठिन है। और जीव की भी निद्रा शक्ति विचित्र स्वप्न को रच लेती है। इससे जाग्रत तथा स्वप्न में भ्रान्त नहीं होना ये दोनों एक ही हैं। दीर्घ स्वप्न मिदं यत्तद्दीर्घं वाचित्त विभ्रमम्। और स्वप्न में मिथ्या स्त्री पुरुष के सम्बन्ध से जो वीर्य पाता है इसी प्रकार मिथ्या जाग्रत में जो पुण्य पाप होगा वह देहान्तर में ऐसे ही प्राप्त होगा जैसे स्वप्न का वीर्य पात जाग्रत में। जब तक जन्म मरण रूपी चक्र की निवृत्ति न होगी तब

तक जाग्रत का स्वप्न में स्वप्न का जाग्रत में और जाग्रत का देहान्तर में देहान्तर का जाग्रत मे का घटी यंत्र मिटेगा नहीं ॥ इससे

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत ।

क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति ॥ इति

शंका—ब्रह्म सत्य जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः। जीवस्य परमात्मना च पर्यायो नात्र भेदधिः । और जिस अधिष्ठान के अज्ञान से जिस भ्रम की प्रतीत होती है। तो उसी अधिष्ठान के ज्ञान से उस भ्रम की निवृत्ति हो जाती है। ऐसे अनेकों प्रमाण तथा उदाहरणों के होते हुये इस जीवात्मा की अखण्ड परमानन्द एक रस रहने वाली शक्ति कैसे तिरोहित होकर कर्ता भोक्ता सुखी दुःखी अनेक प्रकार के विकारों वाला अपने को क्योंकर मान लेता है।

समा०—जैसे अंजनी कुमार श्री महावीर की अमित बलशाली शक्ति ऋषियों के श्राप से तिरोहित होकर सुग्रीव के साथ बालि के त्रास से बड़े दुःख को भोगते रहे। बाद जब वही शक्ति जामवन्त ने स्मर्ण कराई तो तत्काल ही कराल काल वदनाकर होकर सौ योजन अति गंभीर मकरालय समुद्र को अनेक विघ्नों को विदीर्ण कर बात की बात थोड़ी ही देर में पार कर और अनेक प्रकार के प्रतिबन्धों को शान्त कर विभीषण की सहायता से सुखपूर्वक श्रीराम प्रिय जनक नन्दनी का दर्शन कर अनेकों राक्षसों को मार वाटिका विध्वन्स कर रावण का मान मर्दन कर लंका फूँक निर्विघ्न अपने इष्ट राम को प्राप्त कर लिया। इसी प्रकार जीव की वही परम आनन्दमय शक्ति अविद्या से आच्छादित होकर कर्त्ता भोक्तादि दीनता को प्राप्त होकर विवेक के साथ दुःखी होकर विवेक को क्रोध से न रक्षा कर सका। बाद सद्गुरु के उपदेश को प्राप्त होते ही यह जीव अपने वास्तविक रूप शक्ति के बल से शोक मोहमकर नाश कर शंकारूप सुरसा को निर्वाण कर तृष्णारूप सिंहिका को मार अगाध

अपार संसार को उसी दम मिथ्या निश्चय कर इच्छारूप लंकिनी को निर्बल कर अभ्यास की सहायता से परम शांति को मिल अनेक प्रकार के रागद्वेशों को मर्दन कर कामना की शक्ति क्षीण कर वासना का वैराग्हरूप अग्नि से भस्म कर जो अपना इष्ट परब्रह्म उसको अहं ब्रह्मास्मि रूप से प्राप्त हो जाता है। इति

शंका—क्रोध करना चाहिये या नहीं।

समा०—क्रोध किसी पर भी नहीं करना क्योंकि ॥ क्रोध पाप कर मूल ॥

शंका—यह ठीक नहीं, क्रोध के बिना किसी को भय नहीं होता इससे क्रोध करना चाहिये।

समा०—यह ठीक है तो पहले क्रोध के वास्ते रजोगुणी तप करना तब तो क्रोध की शक्ति होगी। फिर जिस अंतःकरण के संयोग से क्रोध होगा तो पहले उसी को जलाकर दूसरे को हानि पहुँचावेगा। जैसे लकड़ी से उत्पन्न हुई अग्नि पहिले उसी लकड़ी को जलाकर दूसरे को तपावेगी। इससे कलयुग में इस प्रकार के तप व्रत का निषेध है। अतएव कल्याणार्थी को केवल एक परम तत्त्व का ही विचार करना चाहिये जिससे जन्म-मरण-रूप बन्धन से मुक्त हो जावें।

शंका—एक ही विषय को अनेक प्रकार से बार-बार क्यों कहते हैं?

समा०—जैसे एक ही प्रकार के सूत का वस्त्र अनेकों रंगों में परिणित कर दिया जाता है। क्योंकि ग्राहकों की इच्छा अनेक रँगों से ही प्रसन्न होती है एक रँग से नहीं। इसी प्रकार मन की वृत्ति अनेकों प्रकार की है जाने किस उदाहरण को ग्रहण कर ले। इससे एक ही विषय के वास्ते अनेक प्रकार के उदाहरणों की आवश्यकता है॥ इति

दो०— इतना ही उपदेश का, होति लेखनी बन्द।
यो विचार कर लेइगा, पावे परमानन्द॥

शं० पद—और अभी थोड़ी स्वामी उपदेश कि हमको आशा है।
फिर जाकर पुछिहैं किससे मम नष्ट भई नहिं वाशा है॥
ऐसा उसने जब प्रश्न किया उपदेश हृदय में आय गया।
दृष्टान्त रूप में कहते हैं आनन्द वर्षा वर्षाय गया॥

दृष्टान्त—एक कोई पुरुष समुद्र पार जाने के वास्ते अति प्रबल इच्छावाला बड़े गम्भीर विचार इसी के तट पर करता हुआ कि जो इसमें ऊँची-नीची अनेक तरंगें उठ रही हैं और अनेक प्रकार के बड़े-बड़े मकर झषादि क्रूर जन्तु कल्लोल कर रहे हैं तथा बड़े गम्भीर भ्रमर भी पड़ रहे हैं तो बिना किसी दृढ़ आश्रय के हम इसके पार कैसे होंगे। यही विचार करते उसको बहुत समय व्यतीत हो गया और कोई युक्ति न मन ठहरानी। वह यही बारम्बार कहे कि हे परमेश्वर हम इसके पार कैसे होवें। हमको यहाँ किंचित् भी चैन नहीं है। तो अकस्मात् एक पुरुष की प्राप्ति हो गई तो उससे यह बड़ी श्रद्धाभक्ति और नम्र वाणी से प्रार्थना करने लगा कि हम यहाँ बहुत दु:ख भोग रहे हैं। आप इसके पार होने का कोई उपाय जानते हों तो कृपाकर कहो हम आपकी शरण हैं। ऐसा सुनकर वह बोला कि बिना अवलम्ब की एक दृढ़ नौका है यदि उसकी इच्छा होवे तो हम बता देवें। इसने कहा बस काम बन गया आप दया कर इतनी ही कृपा कर दीजिये। तो उस पुरुष ने इसकी श्रद्धा देख वह नौका बता दी और आप वहाँ से विदा हो गया। अब इसने अति सूक्ष्म विचार किया और सर्व सामान उसी नौका पर रख कर नौका के बीच एक मजबूत बाँस बाँध कर चारो ओर रस्सियाँ कस दीं और एक मजबूत वस्त्र उसके पृष्ठ भाग में लगाकर नौका पर बैठ उसी तरफ की वायु की प्रतीक्षा करने लगा। कुछ काल के बाद दैवयोग से वही वायु चली और उस वस्त्र से युक्त हुई और नौका इस तरफ से चली तो सर्व तरंगों को फारती हुई

उन जन्तुओं को हटाती और भ्रमरों को उलंघन कर बड़ी शीघ्रता से निरविघ्न पार लग गई। वह पुरुष उतर कर अपने अभीष्ट स्थान को चला गया। और वह नौका इसी प्रकार दूसरे पार जाने वालों के काम में आती है।

दार्ष्टान्त— इसी प्रकार कोई उत्तम जिज्ञासु त्रय ताप से पीड़ित हुआ और जन्म मरण के दु:ख से सन्तप्त हो इस अनित्य संसार में उत्तम देव मध्यम मनुष्य कनिष्ठ पशु पक्षी आदि योनि रूप तरंगें आधि व्याधि रूप भ्रमर और काम, क्रोध, लोभादि अनेक जन्तु इसमें भी कल्लोल मचा रहे हैं। इन सबसे अति घबड़ा कर यह भी विचार करने लगा कि ऐसे भयानक संसार सागर से पार कैसे होवें। इतने ही में इसकी उत्तम जिज्ञासा से और भगवत् कृपा से किसी तत्ववेत्ता ब्रह्मनिष्ठ विरक्त गुरू से भेंट हो गई। तो यह बड़ी श्रद्धा भक्ति और अति नम्र वाणी से हाथ जोड़ विनय करने लगा।

स्वामिन्नमस्ते नतु लोक बंधो कारुण्य सिन्धौ पतितं भवाब्धौ।
मामुद्धरात्मीय कटाक्ष दृष्ट्या ऋज्व्यातु कारुण्य शुधाऽभिवृष्ट्यः।

कहकर बोला कि हम इस जन्म मरण रूप प्रवाह से अति दुखित होकर घबड़ा रहे हैं। आप इसके पार हो जाने की कृपा कीजिये हम आपके शरणागत हैं तो गुरूजी ने कहा कि केवल ब्रह्म आत्मैक्य रूप ज्ञान ही इससे पार होने की दृढ़ स्वतंत्र नौका है। ज्ञानादेव तु कैवल्यम्। ऋतेज्ञानानमुक्तिः। इसने भी विचारा कि बस काम बन गया और कहा कि आप मुझ अधिकारी पर कृपा कर दीजिये। महात्मा जी ने योग्यता देख यथार्थ तत्त्वमसि आदि महा वाक्यों का अर्थ सहित उपदेश कर दिया। स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो। कहकर आप तो अन्तर ध्यान हो गये। अब इसने विचारा कि हमको क्या करना चाहिये तो अपनी धर्म कर्म रूप सामग्री उसी ज्ञान में समाप्त कर दृढ़ अभ्यासरूपी

बाँस में साधन सम्पत्ति रूप रस्सियों से युक्त हो तीव्रतर वैराग्य रूप वस्त्र का अवलम्बन कर भगवत् की कृपा रूप वायु की प्रतीक्षा करने लगा। ईश्वर अनुग्रहात् एव पुन्साम् अद्वैत वासनः। इसी प्रकार कुछ काल के बाद अभ्यास केवल से ईश्वर की कृपा रूप वायु वैराग्य को प्राप्त होते ही यह बोध रूप नौका सर्व उपद्रवों को छिन्न भिन्न कर परम आनन्द मय शांति निर्वातिकस्थान दीप बत स्वरूपानुसन्धान में स्थित कर देती है। इसी प्रकार अनादिकाल से यह ब्रह्मात्मैक्य ज्ञान ही मुमुक्षुओं के कल्याण का साधन है। तथापि किसी दुकान्दार के पास अति उत्तम अमृतांजन है और वह मुफ्त देना भी चाहता है यदि कोई भी बिगड़ी आँख वाला उसका इच्छुक न होगा तो वह उसकी दुकान में ही नष्ट हो जायगा। इसी प्रकार अति उत्तम अनुभवी शिक्षा किसी तत्त्ववेत्ता में है यदि उसका भी कोई मुमुक्षु जिज्ञासा न करेगा तो यह भी उसी तरह इसीके साथ ही नष्ट हो जायगी जैसे रसायनादि अनेक वस्तु लुप्त हो गई। इति

दूसरा दृष्टान्त—हाथी को पकड़ने वाला जंगल के पास एक खंदक बनाकर उसके ऊपर पतरी लकड़ी डालकर मिट्टी से पाटकर बहुत रमणीय काले कागद की हथिनी बनाकर उस खंदक पर खड़ी कर देता है। इतने ही में जंगल से कोई विचारवान् हाथी निकलकर अचेष्टित उसको देखकर तत्काल उसी जंगल का आश्रय लेकर वृक्षों की हरी-हरी पत्तियों को खाकर एक अति उत्तम सरोवर में स्नान कर उसी सरोवर से निकला। अखण्ड धारा प्रवाहित दिव्य जल का पान कर आनन्द से एक गुफा में निवास करता हुआ वह कभी न जंगल से निकलता और न उसका सामना होता है। दूसरा कोई कामान्ध हाथी उसी जंगल से निकलकर देखता है कि यह कैसी सुन्दर रमणीय हथिनी रमण के वास्ते खड़ी है। बस ऐसा विचारकर ज्योंही उसके पास जाता त्योंही हथिनी मिट्टी और लकड़ियों के साथ खंदक में गिर जाता है तो वह पुरुष जिसने खंदक बनाया युक्ति से पकड़ मजबूत साँकर से बाँधकर एक

महावत को सुपुर्द कर देता है तो वह हाथी की पीठ पर गद्दा रखकर एक मजबूत रस्से से कसकर उसके ऊपर कुछ बोझ रखकर मस्तक पर सवार हो जो अंकुश से ताड़ित किया कि उसी समय नेत्रों से अश्रुधारा को बहाकर मरण पर्यन्त महावत के मार्ग का ही अनुसरण करता रहता है।

।ष्टन्त—इसी प्रकार इस मनुष्य जीवरूप हाथी को स्वाभाविक इस वैराग्यरूप जंगल का आश्रय प्राप्त भया है। कोई उत्तम अधिकारी का मन कभी को किंचित्भी वैराग्य से उत्थान को प्राप्त हुआ तो देखा कि यह परम मनोहर अति रमणीत और महाँ दुखदाई जड़राग रूपी हथिनी दृष्टिगोचर हुइ तो यह देखते ही वृत्ति को समाहित कर तत्काल ही वैराग्यरूप जंगल का आश्रय से सतसंगरूप सरोवर में मन को प्रक्षालित कर और उसी से निकला हुआ अखण्ड धारा प्रवाहित स्वात्म-ज्ञान का अनुभव कर निर्द्वन्द्व परमानन्द निर्विकल्प समाधिरूप गुफा में निमग्न रहता है। यह कुछ नहीं है जो है सो वही है। जो वही है सो मैं ही हूँ। इस स्वरूपानुसंधान से जो ज्ञानी रहता है उसको यह राग बाधित न कर सकेगा और इससे अतिरिक्त जिसका वैराग्य शिथिल है। उसकी वृत्ति वैराग्य से उत्थान को प्राप्त होते ही इस तुच्छ क्षणभंगुर मनोहर राग में आसक्त होते ही विषयरूप लकड़ियाँ वासनारूप मिट्टी से विवेक को आच्छादित कर इस रागरूपी हथिनी ने महा अंधकूप संसाररूप खंदक में ज्योंही गिराया त्योंही अज्ञानरूप पकड़नेवाले ने अविद्या आवरण शक्ति करता भोक्तादि से पकड़ और मैं मेरी मोहरूप श्रृंखला से बाँध कामरूप महावत से युक्त कर दिया तो उसने प्रपंचरूप गद्दे को अहंकार रूप रस्से से खूब कसा यानी इसको प्रपंचरूप ही बनाकर अनेक प्रकार के शुभाशुभ सकाम कर्मरूप बोझा से युक्त कर बुद्धिरूप मस्तक पर प्रेरणारूप से स्थित होकर जो क्रोधरूप अंकुश से ताड़ित किया तो यह भी अति विकल होकर महा प्रलय तक इसी के

मार्ग का पालन करता रहता है तो इसके दुःख का अंत कब होगा अर्थात् कभी नहीं ॥ इति

पद—यह बन्ध मोक्ष की कथा इस समय सार रूप से गाई है।

गुरू कृपा की महिमा से हमरे अनुभव में आई है॥

यह अन्तिम उदाहरण हमरी बुद्धी के सन्मुख आय गया।

जिसे समझ कर अज्ञानी भी अपने नियम को पाय गया॥

दृष्टान्त—ईश्वर जीव के साथ रहनेवाला जीव का परम मित्र है। द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया॥ इस प्रमाण से अपने मित्र जीव को अनेक योनियों में भ्रमते और अनेक दुःखों को भोगते देखकर अति दया से द्रवित हो कहने लगे कि ऐ मित्र तुम बहुत दुःखी हो और इन शरीरों से अशोभित हो। इससे हमारे हृदय को अति शोभित करनेवाला यह मनुष्यरूप आभूषण हम तुमको देते हैं।

चौ०—कबहुँक करि करुणा नर देही। देत ईश बिन हेत सनेही॥

यः प्राप्य मानुषं लोकं मुक्ति द्वारमपा वृतम्।

गृहेषु खगवत्सक्तस्तमारूढच्युतं विदुः॥

और इसकी रक्षा के वास्ते जो उत्तम से अति उत्तम वस्त्र भोजनादि सो भी देते हैं। इससे तुम अति शोभा को प्राप्त होकर और इसकी रक्षा के भोगों को भोगकर और जीवनरूप अवधि को समाप्त कर और वर्णाश्रम वैदिक मर्यादा को विधि-विधान से पालन कर जैसा यह तुमको हम निर्दोष देते हैं। यदि ऐसा ही अंत में अपनी अवधि को भोगकर हमारा आभूषण वापस कर दोगे तो हम तुमसे बहुत प्रसन्न रहेंगे और जो विपरीत व्यवहारों तथा विषय-भोगों से इस हमारे आभूषण को दूषित कर दोगे तो हम अति कुपित होकर फिर कभी न देंगे। ऐसा यह अपने ईश्वर मित्र से सुनकर प्रतिज्ञा करता है कि हम इसके आश्रय

अपनी शोभा बढ़ाकर कल्याण का साधन कर और आप के दिये इन भोगों से इसकी रक्षा कर जैसा का तैसा ही आपको वापस कर देंगे। अब यह इसको पाते ही संसार में आकर उस करार को भूलकर और मनमाना काम कर तथा इसमें अपना अभिमान भी कर कि यह हमारा है और उन उत्तम भोगों को भोगकर विषय-वासनाओं में अति आसक्त हो अपने मित्र का आभूषण अति दूषित कर देता है। यह कभी स्वप्न में भी नहीं विचारता कि अज्ञानवश भूल से हमारे मित्र का आभूषण दूषित हो गया तो अब भी उत्तम जप तप व्रतादि करके इसको शुद्ध कर दें। जिससे हमारा मित्र प्रसन्न रहे यह न विचार कर और भी मरण पर्यन्त दूषित ही करते रहते हैं। क्योंकि करार को अब भी न याद किया। अन्त में ईश्वर ले भी लेगा है और कुपित भी हो जाता है और फिर यह इसको कभी नहीं देता तो दुःख का दुःख ही में रहा। यह अविद्या की महिमा है॥ इति

कालेन भक्षितं विश्वं कालो बोधेन भक्षितं।
बोधात्मा कळ कालोऽयं महा कालोऽपि भैरवः॥

भ०गा० - समय जब दुःख का आता तो उसको कुछ न भाता है।
शास्त्र औ धर्म के ऊपर अनेकों दोष लाता है॥ समय०
गुरू की बात ना भाती बुद्धि उसकी बिगड़ जाती।
कहे जो बात कोइ हित की तो सुनकर क्रोध आता है॥ समय०

जब ज्वर का वेग आता है क्षुधा आदिक गमाता है।
करे व्यवहार सब उलटे विविध बातें बनाता है॥ समय०

लंक पति कंश आदिक की याद हमको यहाँ आती।
सुयोधन कर्ण के गाथा इन्हें कैसा बताता है॥ समय०

यह सब विद्वान पण्डित थे समय के बिगड़ जाने से।
लोक मर्याद औ कीर्ति को कैसा शास्त्र गाता॥ समय०
कहैं निर्द्वन्द्व अब टेरी जो हरि से लौ लगाता है।
वही इन द्वन्द्व झगड़ों को जियत सबको नशाता है॥ समय०

भ०गाथा—जागते रहना मुसाफिर चोर आये ग्राम में।
सब धन चुरा ले जाँयगे कुछ भी रक्खें पास में॥ जागते०
जो अगर सो जाओगे तो लूट हो जावे तेरी।
वह बड़े हुसियार हैं औ हैं वह चक्कर चाल में॥ जागते०
यह जो धन अनमोल है उसको वह तकते हैं खड़े।
जो इसे ले जाँयगे तो क्या रहेगा पास में॥ जागते०
इसलिये निर्द्वन्द्व कहते नींद में अब ना पड़ो।
जाग जाओ औ रखाओ बाँण लेकर हाथ में॥ जागते०
जो न मानोगे गुरू की अन्त में पछताओगे।
फिर भी कहते चेत जाओ ना पड़ो भ्रम जाल में॥ जागते०

दादरा – मिरिगन खेत उजारो यतन बिन
पाँच मिरिगवा एक मिरिगिनी।
इन मिलि खेत उजारों यतन बिन॥ मिरिगन०
ज्ञान को धनुष विराग को तरकष।
अनुभव तीर सम्हारो यतन बिन॥ मिरिगन०
ध्यान को लक्ष्लगाय निशाना।
सहित मिरिगिनी मारो यतन बिना॥ मिरिगन०

गुरु की कृपा द्वन्द्व बिन त्यागो ।

ना होगा निरबारो यतन बिना ॥ मिरिगन०

गुरु की कृपा द्वन्द्व बिन त्यागो । ना होगा निरबारो यतन बिना ॥ मृ०

कश्चिन्विद्वान्वदिष्यन्ति येतत् लिखितमग्यताः ।

तस्मात्सत्यं न सन्देहः अहं वक्ष्यामि तत्सृणुः ॥

अहमज्ञो न जानामि मामहं कोहमित्युतः ॥

अज्ञान प्रभावा भावः आत्मा चैतन्य रूपधृक् ।

तथापि—चतुर्वेदग्ययो विप्रो शोमयाजी शतक्रतुः ।

तस्मादपि यतिश्रेष्ठो मेरु शर्शप योरिव ॥

कवित्त—गुरु जी कोही यह विनती सुनावन है.

की आप के चर्णं में चित्त हर दम लगावत है ॥

अलख अगोचर रूप ध्यान में न आवत,

पै सगुण स्वरूप हगन आनद बढ़ावत है ॥

यहै दोष भारी कुछ सेवा नहिं विचारी,

सो जानत हो आप साँच मिथ्याना वखानत है ।

निर्द्वन्द्व दोनों जोरिकर विनय करत बार बार,

दीन है दरिद्री तबहूँ आप कोही कहावत है ॥

प्र०—इस भारत वर्ष में अब मंगल की प्राप्ति कब होगी ।

उ० कवित्त—टाइप को हटाइ शुद्ध लेख जब बनाये जायँ,

तो मन्त्र शक्ति वोही प्रादुर्भाव हो जावेगी ।

रेलन को उखाड़ि गोचर भूमि जो बनाई जाइ,
तो गउअन की रक्षा अनायास हो जावेगी ॥
नहरन को पटाइ कृषी भूमि यदि बनाई जाइ,
तो ईश्वर की कृपा बिन कारण हो जावेगी ॥
मीलन को तोड़ि फोरि विप्रन को दान करे,
तो ऐसी कोन वस्तु जो यहाँ को न आइ जावेगी ॥

इसके ऊपर और अनेक उपलक्षण हैं जैसे विदेशी बोली-भाषा खान-पान भेष-भूषण विद्यादि का भी निवारण और देशी शुद्ध वैदिक आचरण जब होगा तब मंगल की प्राप्ति होगी ।

पुरुष में तीन अर्थ रहते हैं ॥ परमार्थ, धर्मार्थ और कामार्थ जो परमार्थ धर्मार्थ को त्याग कर केवल एक कामार्थ को ही सर्व कुछ मानता है वह उसी प्रकार आपत्ति में पड़ता है ।

अर्थ धर्मौ परित्याज्य यः काम अनुवर्तते ।
एवमापद्यते क्षिप्रं राजा दशरथो यथा ॥

पद—किसहू नहिं बात सुनी हमरी हम रोवत २ आरी भये ।
अरु पुकारत २ हारि गये इससे अति दीन दुखारी भये ॥

॥ इति संक्षिप्त निर्द्वन्द्व-विचारसार समाप्तः ॥

मुद्रक—दुर्गादत्त त्रिपाठी, सन्मार्ग प्रेस, बनारस ।